पूर्वांचल खेती

वर्ष : 29 दिसम्बर 2019 अंक : 12

प्रसार निदेशालय

आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय

कुमारगंज, अयोध्या 224 229 (उ.प्र.)

पूर्वांचल खेती

प्रसार निदेशालय

आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय

कुमारगंज, अयोध्या 224 229 (उ.प्र.)

पूर्वाञ्चल खेती

वर्ष 29 | दिसम्बर, 2019 | अंक 12

संरक्षक

डॉ. बिजेन्द्र सिंह

कुलपति

प्रधान सम्पादक

प्रो. ए. पी. राव

निदेशक प्रसार

तकनीकी सम्पादक

डॉ. अनिल कुमार

सह प्राध्यापक (पशु विज्ञान)

मो. नं. 9415140493

सम्पादक मण्डल

डॉ. आर. आर. सिंह

प्राध्यापक, मृदा विज्ञान

डॉ. वी. एस. चन्देल

सह प्राध्यापक, उद्यान

डॉ. अनिल कुमार

सहायक प्राध्यापक, प्रक्षेत्र प्रबन्ध

डॉ. वी. पी. चौधरी

सहायक प्राध्यापक, पादप रोग

डॉ. पंकज कुमार

सहायक प्राध्यापक, कीट विज्ञान

सम्पादक

उमेश पाठक

मोबाइल नं. 9415720306

इस पत्रिका में प्रकाशित लेख एवं विचार लेखक के निजी हैं। प्रकाशक/सम्पादक इसके लिए उत्तरदायी नहीं है

विषय सूची

जीरो टिलेज (शून्य–कर्षण) तकनीक कितना महत्वपूर्ण 01
–डॉ. राम प्रताप सिंह

कृषि की समन्वित प्रबंधन तकनीक 04
–डॉ. आर.के. सिंह, डॉ. आर.पी. सिंह, प्रो. ए.पी. राव, डॉ. एल.सी. वर्मा एवं डॉ. ए.के. सिंह

फसल अवशेष प्रबंधन तकनीकी 07
–डॉ. प्रदीप कुमार, डॉ. शेष नारायण सिंह, डॉ. एल.सी. वर्मा एवं डॉ. डी.पी. सिंह

धान की कटाई व मड़ाई उपरांत प्रबंधन 10
–डॉ. अंकित तिवारी, राघवेंद्र सिंह, नंदन सिंह, डॉ सौरभ वर्मा एवं प्रो. ए.पी. राव

वैज्ञानिक विधि से गोबर की खाद, कम्पोस्ट एवं हरी खाद बनाना 11
–सुधाकर सिंह, नंदन सिंह, प्रो. ए.पी. राव एवं डॉ नीरज कुमार

जैविक खेती में केंचुआ खाद (वर्मी कंपोस्ट) का महत्व 13
–डॉ. महेश पाल एवं डॉ. अरविन्द कुमार सिंह

आँवला की उन्नत किस्में 16
–शशांक सिंह एवं आकांक्षा सिंह

कम वर्षा की परिस्थिति में औद्यानिक फसलों का प्रबंधन 20
–राजन चौधरी, डॉ. सीता राम मिश्र एवं मंजीत कुमार

न करें प्रतिबंधित कृषि रक्षा रसायनों (पेस्टीसाइड्स) का प्रयोग 22
–डॉ. प्रदीप कुमार एवं डॉ. संजय कुमार सिंह राजपूत

बैंगन में एकीकृत रोग एवं कीट प्रबन्धन 24
–रोहित कुमार बाजपेई, डॉ. डी.पी. मिश्रा एवं डॉ. जी.सी. यादव

दिसम्बर माह में किसान भाई क्या करें? 26
–डॉ. अनिल कुमार

प्रश्न किसानों के, जवाब वैज्ञानिकों के 27

बॉक्स सूचनाएं

पूर्वाञ्चल खेती पढ़िये, आगे बढ़िये 19

लेखकों से अनुरोध 27

प्रसार निदेशालय, आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या

विश्वविद्यालय के कार्य क्षेत्र में स्थापित विभिन्न कृषि विज्ञान/ज्ञान केन्द्र एवं अनुसंधान केन्द्र

क्र. सं.	कृषि विज्ञान केन्द्र	वरिष्ठ वैज्ञानिक/अध्यक्ष/ प्रभारी अधिकारी	मोबाइल	दूरभाष कार्यालय
1.	वाराणसी	डॉ. संजीत कुमार	9837839411	05542–248019
2.	बस्ती	डॉ. एस. एन. सिंह	9450547719	05498–258201
3.	बलिया	डॉ. रवि प्रकाश मौर्य	9453148303	–
4.	फैजाबाद	डॉ. शशिकान्त यादव	9415188020	05278–254522
5.	मऊ	डॉ. एस. एन. सिंह चौहान	–	0547–2536240
6.	चंदौली	डॉ. एस. पी. सिंह	9458362153	0541–2260595
7.	बहराइच	डॉ. एम. पी. सिंह	9415172725	05252–236650
8.	गोरखपुर	डॉ. सतीश कुमार तोमर	9415155818	–
9.	आज़मगढ़	डॉ. के. एम. सिंह	9307015439	–
10.	बाराबंकी	डॉ. शैलेश कुमार सिंह	9455501727	
11.	महाराजगंज	डॉ. डी. पी. सिंह	9451430507	–
12.	जौनपुर	डॉ. सुरेश कुमार कनौजिया	9984369526	–
13.	सिद्धार्थनगर	डॉ. एल. सी. वर्मा	7376163318	05541–241047
14.	सोनभद्र	डॉ. पी. के. सिंह	9415450175	–
15.	बलरामपुर	डॉ. वी. पी. सिंह	9839420165	–
16.	अम्बेडकरनगर	डॉ. रामजीत	9918622745	–
17.	संतकबीरनगर	डॉ. अरविन्द सिंह	9415039117	–
18.	अमेठी	डॉ. रतन कुमार आनन्द	9838952621	–
19.	बहराइच (नानपारा)	डॉ. विनायक शाही	8755011086	–
20.	मनकापुर–गोण्डा	डॉ. ओम प्रकाश	9452489954	–
21.	बरासिन–सुल्तानपुर	डॉ. एस. के. वर्मा	9450885913	–
22.	अमहित–जौनपुर	डॉ. नरेन्द्र रघुवंशी	–	–
23.	गाजीपुर	डॉ. आर. सी. वर्मा	9411320383	–

विश्वविद्यालय के कृषि ज्ञान केन्द्र

क्र.सं.	कृषि विज्ञान केन्द्र	प्रभारी अधिकारी/	मोबाइल	दूरभाष कार्यालय
1.	अमेठी	डॉ. शशांक शेखर सिंह	–	–
2.	गोण्डा	डॉ. ए. पी. राव	9415720376	–
3.	देवरिया	श्रीमती सरिता श्रीवास्तव	9415419712	–
4.	गाजीपुर	डॉ. ए. पी. राव	9415720376	–

विश्वविद्यालय के अनुसंधान केन्द्र

क्र.सं.	कृषि अनुसंधान केन्द्र	प्रभारी अधिकारी/	मोबाइल	दूरभाषा कार्यालय
1.	मसौधा, फैजाबाद	डॉ. डी. के. द्विवेदी	7706884188	05278–254153
2.	तिसुही, मिर्जापुर	डॉ. एस. के. सिंह	9450164714	05442–284263
3.	बसुली, महाराजगंज	डॉ. डी. पी. सिंह	9451430507	–
4.	घाघरा घाट, बहराइच	डॉ. तेजेन्द्र कुमार	9415560503	0525–235205
5.	बड़ा बाग, गाजीपुर	डॉ. सी. पी. सिंह	9628631637	–
6.	बहराइच	डॉ. गजेन्द्र सिंह	7379576412	0548–223690

प्रो. ए. पी. राव
निदेशक प्रसार

आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय
कुमारगंज, अयोध्या-224 229 (उ.प्र.), भारत
टेलीफैक्स : 05270-262821
फैक्स : 05270-262821

सम्पादकीय

धान उत्तर प्रदेश की खरीफ में उगाई जाने वाली एक मुख्य फसल है तथा लगभग 5.63 लाख हेक्टेयर क्षेत्रफल में उगायी जाती है। प्रदेश में इसका लगभग 40–50 टन भूसा प्रतिवर्ष पैदा होता है। इसकी अधिकतर कटाई कम्बाइन से की जाती है तथा इनका उपयोग लगातार बढ़ रहा है, क्योंकि कटाई के लिये मजदूर उपलब्ध नहीं हो पाते तथा रबी गेहूँ की बुवाई समय पर करने का दबाव किसान पर रहता है। ऐसी परिस्थितियों में किसान के लिए फसल अवशेष एक समस्या बने हुए हैं तथा उन्हें जलाकर नष्ट करने का प्रयास करते हैं। किसानों की मानसिकता बनी हुई है कि ऐसा करने से खेत जल्दी साफ हो जाता है। हानिकारक कीट व खरपतवार नष्ट हो जाते हैं तथा गेहूँ की बुवाई समय पर हो जाती है। इसके विपरीत वैज्ञानिक अध्ययन के आधार पर यह पाया गया है कि धान की एक टन पराली जलाने से लगभग 3 किग्रा धूल कण, 60 किग्रा कार्बन मोनोऑक्साइड, 1407 किग्रा कार्बनडाई ऑक्साइड, 199 किग्रा राख तथा 2 किग्रा सल्फर डाई ऑक्साइड निकलते हैं। यह सभी पर्यावरण को खराब करते हैं तथा स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव डालते हैं ऐसी परिस्थितियों में कम लागत व पर्यावरण हितैषी फसल अवशेष्ज्ञ प्रबंधन तकनीकी विकसित करने तथा उन्हें किसानों में लोकप्रिय बनाने की अति आवश्यकता है। धान की फसल अवशेष जैविक ईंधन, कंपोस्ट, मशरूम उत्पादन, ब्रीकेट्स, बायोपचार, पशु चारे आदि के लिए इस्तेमाल किया जा सकता है। जिसका मुख्य उद्देश्य यह है कि उन्हें जलाया ना जाए ताकि वातावरण को सुरक्षित रखा जा सके व भूमि की उपजाऊ शक्ति को बढ़ाया जा सके जोकि आज के खेती के लिए एक बहुत बड़ी चुनौती है। इस विषय में नीति निर्धारकों, वैज्ञानिकों, उद्योगपतियों, पर्यावरण विधि व किसानों को मिलजुलकर काम करना होगा, ताकि इन फसल अवशेषों का उपयोगी वस्तुओं के लिए इस्तेमाल करके न केवल हम पर्यावरण बचा सकेंगे अपितु हम किसानों को सामाजिक आर्थिक दशा सुधारने में भी सफल होंगे।

पूर्वांचल खेती के इस अंक में **जीरो टिलेज (शून्य–कर्षण) तकनीक कितना महत्वपूर्ण, कृषि की समन्वित प्रबंधन तकनीक, फसल अवशेष प्रबंधन तकनीकी, धान की कटाई व मड़ाई उपरांत प्रबंधन, वैज्ञानिक विधि से गोबर की खाद, कम्पोस्ट एवं हरी खाद बनाना, जैविक खेती में केंचुआ खाद (वर्मी कंपोस्ट), आँवला की उन्नत किस्में, कम वर्षा की परिस्थिति में औद्योगिक फसलों का प्रबंधन, न करें प्रतिबंधित कृषि रक्षा रसायनों (पेस्टीसाइड्स) का प्रयोग, बैंगन में एकीकृत रोग एवं कीट प्रबन्धन, दिसम्बर माह में किसान भाई क्या करें?, प्रश्न किसानों के, जवाब वैज्ञानिकों के** जैसे लेख प्रकाशित जा रहे हैं, मुझे पूर्ण विश्वास है कि किसानों की आय में वृद्धि के लिये यह अंक उपयोगी सिद्ध होगा।

(ए.पी. राव)

जीरो टिलेज (शून्य-कर्षण) तकनीक कितना महत्वपूर्ण

डॉ. राम प्रताप सिंह*

धान, गेहूँ उत्तर भारत के मैदानी क्षेत्रों का प्रमुखतम फसल चक्र है। विशेषतः सिन्धु गंगा के मैदानी क्षेत्रों जिसमें हरियाणा, पंजाब, उत्तर प्रदेश, उत्तरांचल का तराई क्षेत्र, मध्य प्रदेश, बिहार व पश्चिमी बंगाल प्रमुख है। इन क्षेत्रों के अन्तर्गत 105 लाख हेक्टेयर क्षेत्र आता है। धान की फसल कटाई के उपरान्त उसी खेत में बिना कोई जुताई किये हुये जीरो सीड ड्रिल (जिसमें उर्वरक एवं बीज एक साथ प्रयोग किये जा सकते हैं) द्वारा गेहूँ की बुवाई करने को जीरो टिलेज (शून्य कर्षण) तकनीक कहते हैं। इस तकनीक की सहायता से खेत की तैयारी पर होने वाली लागत की बचत एवं समय से गेहूँ की बुवाई सुनिश्चित की जा सकती है, परिणामतः उत्पादन लागत में काफी कमी लाई जा सकती है।

उत्तर भारत का किसान इस सच्चाई को जानता है कि इस क्षेत्र में धान की फसल देरी से पकती है तथा देर से ही कटाई होती है। धान की फसल देर से पकने के कारण गेहूँ की बुवाई 25 नवम्बर के बाद ही संभव हो पाती है। यहाँ तक कि गेहूँ की बुवाई जनवरी के प्रथम सप्ताह तक चली जाती है। अतः किसान की भलाई इसी में है कि वह जीरो टिलेज तकनीक अपनाकर, गेहूँ की बुवाई समय पर करें। अनुभवों से यह ज्ञात हुआ कि सभी प्रकार की मिट्टियों में जीरो टिलेज से गेहूँ की बुवाई लाभदायक है।

यह तकनीक निम्न कृषि जलवायु परिस्थितियों के लिये विशेष रूप से लाभप्रद है

- भारत के उत्तर पश्चिमी मैदानी क्षेत्रों में जहाँ की मृदा बनावट में हल्की, उत्तम जल निकास, न्यून जल धारण क्षमता, उच्च निक्षालन दर तथा खरपतवारों की समस्या से ग्रस्त है, प्राकृतिक संसाधनों के लगातार अत्यधिक दोहन के परिणामस्वरूप उत्पादन स्तर को ऊँचा बनाये रखना तथा उत्पादन लगात में कमी करना दोनों ही कठिन हो गया है।
- ऐसे क्षेत्र, जहाँ की मृदा बनावट में भारी, निम्न जल निकास, उच्च जल धारण क्षमता, निम्न निक्षालन दर, अधिक नमी की वजह से जुताई में कठिनाई एवं ढेलों के निर्माण आदि के कारण खेत तैयारी हेतु उपयुक्त दशा में विलम्ब से आता है। उत्तरी पूर्वी भारत के अधिकांश क्षेत्रों में ऐसी परिस्थितियाँ किसानों को विलम्बित बुवाई करने को बाध्य कर देती हैं तथा गेहूँ की बुवाई में 15 से 45 दिनों तक का विलम्ब अपरिहार्य हो जाता है। इसका उपज के साथ–साथ गुणवत्ता पर भी कुप्रभाव पड़ता है। शून्य कर्षण आसानी से अपनाई जा सकने वाली ऐसी तकनीक है जिसकी सहायता से उत्पादन लागत में कमी के साथ–साथ गेहूँ की समय से बुवाई एवं उपज में वृद्धि सुनिश्चित की जा सकती है।

गेहूँ की किन प्रजातियों को अपनायें

समय से बुवाई एवं पछेती बुवाई दोनों परिस्थितियों के लिए क्षेत्रीय स्तर पर अलग–अलग अनुशंसित प्रजातियों को अपनायें जो निम्नवत् हैं।

सिंचित दशा में सामयिक बुवाई

के.9107 (देवा), एच.पी. 1731 (राजलक्ष्मी), के.9006 (उजियार), एन.डब्लू. 1012, यू.पी. 2382, एच.पी. 1761, एच.यू.डब्लू. 468, एच.यू.डब्लू. 510, एच.डी. 2733, एच.डी. 2824, पी.बी.डब्लू. 343, पी.बी.डब्लू. 443, यू.पी. 2338, एच.डी. 2888, एच.डी. 2824, एच. डी. 2967, के. 0307, पी.बी.डब्लू. 502, सी.बी.डब्लू. 38, राज 4120, डी.बी.डब्लू.39, डी.बी.डब्लू. 17, डी.बी.डब्लू 187, डी.एल. 784–3 (वैशाली)।

सिंचित दशा में विलम्ब से बुवाई

के. 8962, के. 9465, के. 9351, के. 9162, के. 9533, के. 9423, के. 7903, यू.पी. 2425, एच.डब्लू. 2045, एच.

*सहायक प्राध्यापक (शस्य विज्ञान), शस्य विज्ञान विभाग, आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या–224229

डी.आर. 77, एच.यू.डब्लू. 533, एच.डी. 2888, एच.पी. 1731, एच.पी. 1744, एच.पी. 1633, एच.यू.डब्लू.326, एच.यू.डब्लू. 234, सी. 306, पी.बी.डब्लू. 175, पी.बी. डब्लू. 373, नरेन्द्र गेहूँ 1014, नरेन्द्र गेहूँ 1076, नरेन्द्र गेहूँ 2036, बी.डब्लू. 14, डी.बी.डब्लू. 16 एवं के. 8027।

अति विलम्ब की दशा

एच.डी. 2285, एच.डी. 2307, एच.डी. 2402।

उपयुक्त बीज दर अपनायें

जीरो टिलेज द्वारा उचित समय पर बुवाई के लिये बीज की मात्रा 100 किग्रा/हेक्टेयर की आवश्यकता पड़ती है। इस विधि से गेहूँ की विलम्ब से बुवाई करते समय इस बात का ध्यान रखें कि प्रति हेक्टेयर बीज की मात्रा सामान्य से 20 से 25 प्रतिशत अधिक रहे, क्योंकि देर से बुवाई की गई गेहूँ में कल्ले कम निकलते हैं और पैदावार कम हो जाती है।

गेहूँ की बुवाई से पूर्व बीज उपचार न भूलें

बीजोपचार हेतु बीटावैक्स या बविस्टीन 2.5 ग्राम/किग्रा बीज की दर से प्रयोग करें। इसके दो लाभ होते हैं। पहला यह कि गेहूँ की फसल को बीमारियों से बचाया जा सकता है एवं दूसरा यह कि बीज को चिड़ियों आदि से बचाया जा सकता है। क्योंकि इस तकनीक से बुवाई करने पर बीज सतह के नजदीक होता है जिसके कारण चिड़ियों द्वारा बीज को खा जाने का खतरा रहता है।

उर्वरकों की कितनी मात्रा का उपयोग करें

आमतौर पर गेहूँ की फसल में लगभग 120 किग्रा नाइट्रोजन, 60 किग्रा फास्फोरस तथा 40 किग्रा पोटाश की आवश्यकता होती है। फास्फोरस (130 किग्रा डी.ए.पी./एन.पी.के. प्रति हेक्टेयर) एवं पोटाश (65 किग्रा म्यूरेट ऑफ पोटाश/हेक्टेयर) की पूर्ण मात्रा जीरो सीड–ड्रिल में संलग्न उर्वरक गिराने वाले फर्टी–ड्रिल द्वारा बुवाई के साथ डालना चाहिए। इससे करीब 23 किग्रा नत्रजन/हेक्टेयर की दर से आपूर्ति हो जाती है। नत्रजन की शेष मात्रा (210 किग्रा यूरिया) दो समान भागों में प्रथम एवं द्वितीय सिंचाई के समय देना लाभदायक होता है।

सिंचाई

जीरो टिलेज मशीन से बोये गये गेहूँ की फसल में पहली सिंचाई, बुवाई के 21 दिन बाद करना अच्छा रहता है। दूसरी सिंचाई बुवाई के 40–45 दिन बाद तीसरी सिंचाई बुवाई से 60–65 दिन बाद चौथी सिंचाई 80–85 दिन, पाँचवीं सिंचाई बुवाई के 100–105 दिन बाद एवं छठी सिंचाई बुवाई के 115–120 दिन बाद, यह सिंचाई हल्की मृदा में करनी पड़ती है। यदि भारी मृदा है तो कुल चार सिंचाई से ही काम हो जाता है। भारी मृदा में पहली सिंचाई 20–25 दिन पर दूसरी सिंचाई पहली सिंचाई के 30 दिन बाद तीसरी सिंचाई दूसरी सिंचाई के 30 दिन बाद एवं चौथी सिंचाई तीसरी सिंचाई के 25 दिन बाद करना लाभदायक है।

खरपतवारों के नियंत्रण से गेहूँ की पैदावार बढ़ाई जा सकती है

किसानों को इस बात की जानकारी होनी चाहिये कि जीरो टिलेज एवं जीरो टिल तकनीक के उपयोग से खरपतवारों का प्रकोप काफी कम हो जाता है क्योंकि ड्रिल द्वारा उर्वरक बुवाई के समय गेहूँ के बीज के पास डालने के कारण खरपतवारों को उर्वरक से पोषण नहीं मिल पाता। वैसे तो धान की कटाई के उपरान्त ही खेत में खड़े खरपतवारों को निकाल देना चाहिये परन्तु ऐसे खरपतवारों की संख्या अधिक होने से ये जीरो टिल मशीन के चलने में रूकावट डालते हैं तथा बीज एंव उर्वरक मिट्टी में सही गहराई एवं स्थान पर नहीं गिर पाते। ऐसी दशा में इनके नियंत्रण हेतु पैराक्वाट 0.5 किग्रा सक्रिय तत्व का छिड़काव 600–800 लीटर पानी में घोल बनाकर प्रति हेक्टेयर की दर से प्रयोग करना चाहिये। इससे मौसमी पत्तेदार खरपतवार नियंत्रण के साथ इन्हें जड़ से नियंत्रित किया जा सकता है।

फ्लेरिस माइनर (मंडूसी/गुल्ली डण्डा/गेहूँ का मामा) के नियंत्रण के लिये सल्फोसल्फ्यूरान (लीडर) 30 ग्राम/हेक्टेयर की दर से 500 लीटर पानी में घोलकर बुवाई के 30–35 दिन के बाद छिड़काव करें।

जीरो टिलेज एवं जीरो टिल को अपनाने से लाभ

- जीरो टिलेज में धान काटने के बाद गेहूँ की बुवाई के लिये खेत की तैयारी नहीं की जाती है। अतः पारम्परिक विधि से बार–बार जुताई (ट्रैक्टर, डीजल एवं मजदूर) पर होने वाले खर्च (लगभग 2000–3000 रूपये प्रति हेक्टेयर) की बचत की जा सकती है।
- यह तकनीक पर्यावरण प्रदूषण के प्रति मित्रवत् व्यवहार रखती है।
- इस तकनीक के प्रयोग से धान की कटाई के तुरन्त बाद मिट्टी में समुचित नमी रहने पर गेहूँ की बुवाई कर देने से फसल की अवधि में 20 से 25 दिनों का अतिरिक्त समय मिल जाता है जिसके कारण ही गेहूँ की पैदावार में वृद्धि होती है।
- इस विधि के प्रयोग से बोये गये गेहूँ के बीज की गहराई 3–5 सेमी होती है एवं बीज के ऊपर हल्की मिट्टी की परत पड़ जाती है। परिणामतः बीज का जमाव एवं कल्लों का फुटाव अच्छा होता है।
- इस विधि में बीज का अंकुरण परम्परागत विधि की अपेक्षा दो तीन दिन शीघ्र होता है।
- जीरो टिलेज के प्रयोग से फ्लेरिस माइनर (मंडूसी/गुल्ली डण्डा/गेहूँ का मामा) नामक खरपतवारों को काफी कम किया जा सकता है। जिसके फलस्वरूप गेहूँ की पैदावार में बढ़ोत्तरी होती है। इस तकनीक को अपनाने से मिट्टी में फसल अवशेष के योगदान से कार्बनिक पदार्थ के साथ–साथ पौधों के लिये आवश्यक पोषक तत्वों की वृद्धि होती है तथा भूमि की उर्वराशक्ति बनी रहती है। भूमि के रसायनिक एवं भौतिक गुणों पर भी इस तकनीक का लाभदायक प्रभाव पाया गया है।
- इस विधि से खेत की जुताई न होने से जमीन की सतह समतल बनी रहती है जिसके कारण जोते गये खेत की अपेक्षा सिंचाई जल शीघ्रता से अधिक क्षेत्र में फैलता है और पहली बार सिंचाई जल की 30–40 प्रतिशत बचत होती है फलस्वरूप जल की उत्पादकता बढ़ाने में महत्वपूर्ण योगदान देती है।
- परम्परागत विधि से बोई गई गेहूँ की फसल में पहली सिंचाई के बाद पौधों में पीलापन आना एक आम समस्या है। कारण यह है कि अच्छी तरह तैयार किये गये खेत की भुरभुरी मिट्टी की जलधारण क्षमता अधिक होती है इसलिये सिंचाई जल की अतिरिक्त मात्रा का उपयोग स्वतः ही हो जाता है, परिणामस्वरूप फसल पीली पड़ जाती है। इसके बावजूद शून्य कर्षण (जीरो टिलेज) के अन्तर्गत बिना जुती भूमि में पानी अवांछित रूप में नहीं रूकता, अतः फसल में पीलापन आने की उपरोक्त समस्या प्रायः उत्पन्न नहीं होती।
- हारवेस्टर से कटाई करने पर खेत का पुवाल बिना जलाये सीधे तुरन्त बुवाई हो जाती है। इससे खेत की उपजाऊ शक्ति बढ़ती है तथा अधिक पैदावार मिलती है।

जीरो टिलेज तकनीक अपनाने में आवश्यक सावधानियाँ

- धान की फसल की कटाई करते समय केवल 15 सेमी से छोटे डण्ठल छोड़े जायें, तो मशीन द्वारा बुवाई करने में कोई कठिनाई नहीं होती।
- गेहूँ की बुवाई करने से पहले जीरो टिलेज मशीन का अंशाकन कर लेना चाहिये जिससे बीज तथा खाद निर्धारित मात्रा एवं गहराई में ही पड़ें।
- बुवाई करते समय इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिये कि बीज सतह से 3–5 सेमी की गहराई तक डाला जाये। अगर अधिक गहराई हो गई तो जमाव तथा कल्ले का फुटाव कम होगा तथा गेहूँ के पैदावार में कमी आ जायेगी।
- जीरो टिल मशीन में दानेदार खाद का उपयोग करना लाभदायक होता है क्योंकि इससे खाद की नली में गतिरोध उत्पन्न नहीं होता।

शेष पृष्ठ 9 पर

कृषि की समन्वित प्रबंधन तकनीक

डॉ. आर.के. सिंह*, डॉ. आर.पी. सिंह*, प्रो. ए.पी. राव**, डॉ. एल.सी. वर्मा* एवं डॉ. ए.के. सिंह***

वर्तमान में दिनों दिन बढ़ती हुई जनसंख्या की खाद्य व अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति करना एक बहुत बड़ी चुनौती है क्योंकि संसाधनों की उपलब्धता सीमित है व प्रति व्यक्ति औसत जोत का आकार घटता जा रहा है। अतः हमारे पास एकमात्र विकल्प यह है कि प्रति इकाई क्षेत्रफल में फसलों की उत्पादकता स्तर बढ़ाया जाये। रसायनिक उर्वरक, कीटनाशक, खरपतवारनाशक आदि के लगातार प्रयोग से मृदा स्वास्थ्य, वातावरण एवं कृषि खाद्यान्नों की गुणवत्ता पर दुष्प्रभाव परिलक्षित होने लगे हैं। कृषि रसायनों के लगातार प्रयोग करने से कीटों, रोगाणुओं एवं खरपतवारों में इन रसायनों के प्रति सहनशीलता विकसित होती जा रही है, फलस्वरूप इसके प्रयोग की मात्रा की भी वृद्धि होती जा रही है।

कृषि रसायनों के दुष्परिणाम सामने आने पर अब जैविक खेती की अवधारणा पर जोर दिया जा रहा है। जैविक खेती से आशय है कृषि पद्धतियों में किसी भी तरह के कृषि रसायनों एवं उर्वरकों का प्रयोग बिल्कुल न करें और पोषक तत्व प्रबंधन में जैविक एवं कार्बनिक खादों एवं कीट रोग के नियंत्रण में जैविक विधियों को ही अपनायें। जैविक खेती को किस सीमा तक अपनाया जा सकता है और क्या जैविक खेती से वर्तमान खाद्य व अन्य कृषि आवश्यकताओं की पूर्ति हो सकती है? इन प्रश्नों का उत्तर सही मायने में नकारात्मक ही है। कृषि रसायनों का प्रयोग करते–करते जैविक खेती अपनाने से फसल उत्पादकता में गिरावट आ सकती है। जैविक खेती में फसल पोषण, कीट एवं रोग प्रबंधन, जैविक आदानों की पूर्ति वर्तमान परिप्रेक्ष्य में प्रायोगिक तौर पर कठिन प्रतीत होती है।

अतः समय की माँग है कि हम ऐसी पद्धतियाँ अपनायें जिनमें कृषि रसायनों का प्रयोग कम से कम एवं विवेकपूर्ण ढंग से हो और जैविक संसाधनों व विधियों के साथ उनका समन्वित प्रयोग करें अर्थात समन्वित कृषि प्रबंधन तकनीकें अपनाने की आवश्यकता है।

समन्वित कृषि प्रबंधन तकनीकों के प्रमुख घटक इस प्रकार हैं।

- समन्वित पोषक तत्व प्रबंधन
- समन्वित खरपतवार प्रबंधन
- समन्वित कीट प्रबंधन
- समन्वित रोग प्रबंधन

समन्वित पोषक तत्व प्रबंधन

- फसलें मृदा से जितने पोषक तत्वों का शोषण करती हैं उनका पुनर्भरण मृदा उर्वरता बनाये रखने के लिए आवश्यक है। प्रमुख पोषक तत्वों के साथ–साथ सूक्ष्म पोषण तत्वों की कमी मृदा में होती है। फसलों में संतुलित पोषण के लिए समन्वित पोषक तत्व प्रबंधन तकनीक अपनानी चाहिए। समन्वित पोषक तत्व प्रबंधन से आशय यह है कि पोषक तत्वों के सभी स्रोतों जैसे उर्वरक, कार्बनिक खाद एवं हरी खाद, फसल अवशेष प्रबंधन आदि का कुशल एवं श्रेष्ठ समायोजन कर फसलों को संतुलित पोषण देना है। अनुसंधान परिणामों के अनुसार उर्वरक की उपयोगिता उनको देशी खाद के साथ प्रयोग करने से बढ़ जाती है व फसलों की गुणवत्ता में सुधार होता है।
- प्रमुख पोषक तत्वों (नाइट्रोजन, फास्फोरस व पोटाश) के मुख्य स्रोत रसायनिक उर्वरक ही हैं

*कृषि विज्ञान केन्द्र, कोटवा आजमगढ़, **निदेशक प्रसार आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या–224229
*** कृषि विज्ञान केन्द्र, बरासिन, सुल्तानपुर

लेकिन इनके साथ गोबर की खाद, वर्मी कम्पोस्ट व हरी खाद वाली फसलों आदि का भी प्रयोग करें।

- द्वितीय पोषक तत्वों सल्फर, कैल्शियम, मैग्नीशियम की कमी होने पर जिप्सम, सल्फर आदि का प्रयोग किया जाये।
- उर्वरक की मात्रा का निर्धारण फसल चक्र को ध्यान में रखकर करें। दलहनी फसलों को फसल चक्र में शामिल करें जिससे अगली फसल की 15–20 किग्रा नाइट्रोजन की आवश्यकता पूरी हो सके।
- भूमि को परती छोड़ने की जगह हरी खाद वाली फसलें ढैंचा, सनई, ग्वार, मूँग आदि लेकर पोषक तत्व प्रदान करें।
- जैव उर्वरकों के प्रयोग द्वारा 15–25 किग्रा नाइट्रोजन व फास्फोरस की बचत की जा सकती है। दलहनी फसलों में राइजोबियम कल्चर तथा अनाज वाली फसलों में एजोटोबैक्टर कल्चर से बीज उपचार करें। पी.एस.बी. कल्चर सभी फसलों के बीज उपचार के लिए उपयुक्त है।
- मृदा में सूक्ष्म तत्वों की कमी होने पर आवश्यकतानुसार उनका पोषण करें जैसे जिंक सल्फेट 20–25 किग्रा प्रति हेक्टेयर की दर से प्रयोग करें।
- उर्वरक की उपयोगिता दक्षता बढ़ाने के लिए बीज व उर्वरक को सही गहराई पर डालने वाली फर्टी–सीड–ड्रिल का उपयोग करें।

समन्वित खरपतवार प्रबंधन

खरपतवार अवांछित पौधे होते हैं जो उस स्थान या समय पर उग जाते हैं जहाँ हम उन्हे नहीं चाहते हैं। ये अवांछित पौधे फसलों के पोषक तत्वों, मृदा, जल, प्रकाश आदि के लिये फसलों से प्रतिस्पर्धा कर फसलों को भारी नुकसान पहुँचाते हैं। इनसे होने वाली हानि 30–35 प्रतिशत तक आँकी गयी है। खरपतवारों को नियंत्रित करने के लिए रसायनिक खरपतवार प्रबंधन का उद्देश्य है। खरपतवार को नियंत्रित करने के लिए सभी आवश्यक उपाय करने चाहिए एवं आवश्यकतानुसार खरपतवारनाशी काम में लेना चाहिए।

- खरपतवार के फैलाव को रोकने के लिए खरपतवार को बीज बनने से पहले नष्ट करें।
- फसलों के शुद्ध बीज, जिनमें खरपतवार के बीज न हों, काम में लें।
- ग्रीष्मकाल में गहरी जुताई करने से खरपतवार के बीज नष्ट हो जाते हैं।
- फसलों की सही समय पर बुवाई करें जिससे फसल खरपतवार से प्रतिस्पर्धा में आगे रहें।
- उर्वरक को फसल के नीचे प्रयोग करें।
- फसलों की पंक्तियों में बुवाई करें जिससे निराई–गुड़ाई करने में आसानी रहे।
- निराई–गुड़ाई के लिए उन्नत कृषि यंत्रों जैसे हैन्ड हो, व्हील हो आदि का प्रयोग करें।
- फसलों को प्रारम्भिक काल में खरपतवार मुक्त रखने के लिए अंकुरण या बुवाई पूर्व प्रयोग किये जाने वाले खरपतवारनाशी काम में लें।
- सुविधा होने पर सिंचाई द्वारा खरपतवार को उगने का मौका दें फिर जुताई द्वारा उन्हें नष्ट कर दें बाद में फसल की बुवाई करें।
- जैविक खरपतवार नियंत्रण की जानकारी लेकर इसे अपनायें जैसे गाजर घास (कांग्रेस ग्रास) को नियंत्रित करने के लिये बिटिल जाइगोग्राम बाई कोलोराटा को छोड़कर नियंत्रित किया जा सकता है।

समन्वित कीट प्रबंधन

कीट नियंत्रण करने का यह प्राकृतिक तरीका है जिसमें यान्त्रिक, जैविक एवं रसायनिक तरीके एक दूसरे के पूरक के रूप में काम में लिये जाते हैं जिससे इनकी संख्या को फसल में अधिक नुकसान की स्थिति पर पहुँचने से पूर्व ही नियंत्रण में रखा जा सके। आई.

पी.एम. एक तकनीक न होकर व्यवस्था प्रबंधन है जिसमें किसान अपने अनुभवों से सीख लेकर और अनुसंधान कर फसल प्रबंधन के अन्तर्गत ही हानिकारक जीवों को नियंत्रित करता है। समन्वित कीट प्रबंधन के प्रमुख बिंदु इस प्रकार हैं।

- कीट द्वारा पहुँचाये जाने वाले नुकसान को रोकने के लिए अनुवांशिक प्रतिरोधिता होना एक प्रमुख अंग है। अतः प्रतिरोधी / सहनशील किस्मों के बीज का प्रयोग करें।
- गर्मी की जुताई, फसल के अवशेषों को नष्ट करना, खेत में विभिन्न प्रकार की डोलियों को तोड़कर खेत को समतल करना, सही मात्रा में समय पर बीज की बुवाई, पौधों के बीच सही दूरी रखना, फसल चक्र अपनाना आदि क्रियाओं के अपनाने से कीड़ों की संख्या को कम करने में सहायता मिलती है।
- प्रकाश पाश, पीले चिपकने वाले पाश एवं गंधपाश का उपयोग कीटों की संख्या समझ कर समय पर कीट नियंत्रण उपाय अपनायें।
- कीट एवं उनके दुश्मन कीट की उपस्थिति के बारे में लगातार निगरानी करें।
- फसल को बचाने वाली परजीवी, परभक्षी एवं पेथोजन का संरक्षण करें।
- फसलों को बचाने एवं कीटों को नुकसान पहुँचाने वाले परजीवी कीटभक्षियों के अण्डों एवं लार्वों को खेतों में पनपने दें।
- नुकसानदायक कीटों के अण्ड समूहों एवं लटों को एकत्रित कर नष्ट करें।
- कीट नियंत्रण उपाय अपनाने से पूर्व यह देखें कि कीटों एवं फसलों को बचाने वाले कीट के बीच अनुपात 2:1 हो।
- जैविक नियंत्रण के लिए मित्र कीटों को संरक्षित करें जैसे मकड़ियों, क्राईसोपा, ट्राईकोग्रामा, एन. पी.वी. को खेतों में कीट नियंत्रण हेतु छोड़ना चाहिए जो हानिकारक कीटों को खाकर उनको समाप्त कर दें।
- नीम आधारित कीट नाशक का चयन सुरक्षित रूप से एवं विवेकपूर्ण प्रयोग कीट द्वारा फसल को अधिक नुकसान पहुँचाने की अवस्था पर करें।

समन्वित रोग प्रबंधन

स्वस्थ्य पौधों में कोशिका विभाजन, भूमि से जल खनिज पदार्थों का अवशोषण और पौधों में उनका वातावरण, सूर्य के प्रकाश में भोजन का संश्लेषण, जल का उत्स्वेदन आदि शारीरिक कार्य सामान्य रूप से होते हैं। इसके विपरीत यदि कोई पौधा किसी व्याधिग्रस्त पौधे की संगत में एक या एक से अधिक उपरोक्त क्रियाओं को पूरा करने में असामयिक रहता है और अपनी ही जाति के अन्य दूसरे पौधे से भिन्न दिखाई देता है तो इस प्रकार की असमानता को रोग की संज्ञा दी जाती है।

समन्वित रोग प्रबंधन के उपाय

रोग नियंत्रण का उद्देश्य रोग से होने वाली संभावित आर्थिक हानि को रोकना और फसल का मूल्य बढ़ाना है। इसलिए रोग नियंत्रण के जो उपाय किये जायें, वे व्यवहारिक, प्रभावकारी, सुलभ और आर्थिक दृष्टि से सही होने चाहिए। रोगों का पूर्ण नियंत्रण किसी भी एक उपाय से नहीं होता है इसलिए कई सम्मिलित रोग नियंत्रण विधियों को अपनाना हो जाता है। प्रबंधन की इस मिली–जुली प्रणाली में निम्न उपाय अपनाये जा सकते हैं।

- खेत के चुनाव में सावधानी रखनी चाहिए। रोग ग्रसित खेत का चुनाव न करें।
- क्षेत्र की भौगोलिक परिस्थिति को ध्यान में रखकर ही फसल का चुनाव करें।
- गर्मियों में विशेषकर मई–जून में भूमि की कम से कम दो बार गहरी जुताई अवश्य करें।
- फसल चक्र में राग मुक्त फसल का चुनाव करें।

शेष पृष्ठ 12 पर

फसल अवशेष प्रबंधन तकनीकी

डॉ. प्रदीप कुमार*, डॉ. शेष नारायण सिंह*, डॉ. एल.सी. वर्मा** एवं डॉ. डी.पी. सिंह***

धान उत्तर प्रदेश की खरीफ में उगाई जाने वाली एक मुख्य फसल है तथा लगभग 5.63 लाख हेक्टेयर क्षेत्रफल में उगायी जाती है। प्रदेश में इसका लगभग 40–50 टन भूसा प्रतिवर्ष पैदा होता है। इसकी अधिकतर कटाई कम्बाइन से की जाती है तथा इनका उपयोग लगातार बढ़ रहा है, क्योंकि कटाई के लिये मजदूर उपलब्ध नहीं हो पाते तथा रबी गेहूँ की बुवाई समय पर करने का दबाव किसान पर रहता है। ऐसी परिस्थितियों में फसल अवशेष एक समस्या बनी हुई है तथा किसान उन्हें जलाकर नष्ट करने का प्रयास करते हैं। किसानों की मानसिकता बनी हुई है कि ऐसा करने से खेत जल्दी साफ हो जाता है। हानिकारक कीट व खरपतवार नष्ट हो जाते हैं तथा गेहूँ की बुवाई समय पर हो जाती है। इसके विपरीत वैज्ञानिक अध्ययन के आधार पर यह पाया गया है कि धान की एक टन पराली जलाने से लगभग 3 किग्रा धूल कण, 60 किग्रा कार्बन मोनोऑक्साइड, 1407 किग्रा कार्बनडाई ऑक्साइड, 199 किग्रा राख तथा 2 किग्रा सल्फर डाई ऑक्साइड निकलते हैं। यह सभी पर्यावरण को खराब करते हैं तथा स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव डालते हैं ऐसी परिस्थितियों में कम लागत व पर्यावरण हितैषी फसल अवशेष प्रबंधन तकनीकी विकसित करने तथा उन्हें किसानों में लोकप्रिय बनाने की अति आवश्यकता है। धान के फसल अवशेष जैविक ईंधन, कंपोस्ट, मशरूम उत्पादन, ब्रीकेट्स, बायोचार, पशु चारे आदि के लिए इस्तेमाल किया जा सकता है। जिसका मुख्य उद्देश्य यह है कि उन्हें जलाया ना जाए ताकि वातावरण को सुरक्षित रखा जा सके व भूमि की उपजाऊ शक्ति को बढ़ाया जा सके जोकि आज के खेती के लिए एक बहुत बड़ी चुनौती है। इस विषय में नीति निर्धारकों, वैज्ञानिकों, उद्योगपतियों, पर्यावरण विद् व किसानों को मिलजुलकर काम करना होगा, ताकि इन फसल अवशेषों का उपयोगी वस्तुओं के लिए इस्तेमाल करके न केवल हम पर्यावरण बचा सकेंगे अपितु हम किसानों की सामाजिक आर्थिक दशा सुधारने में भी सफल होंगे।

फसल अवशेष के समुचित प्रबंधन के लिए तकनीकी विकल्प

(1) मशीनों का इस्तेमाल

धान के अवशेषों को जमीन पर रखने, जमीन में मिलाने व खेत में निकालने के लिए विभिन्न प्रकार की मशीने विकसित की गई है खेत के स्तर पर धान के अवशेषों के प्रबंधन के विभिन्न तरीके इस प्रकार हैं।

(क) खेत में ही अवशेषों का इस्तेमाल

यह दो तरीके से किया जा सकता है एक अवशेष खेत में पलट कर व दूसरा भूमि के सतह पर रखकर। इसके लिए कंबाइन हार्वेस्टर से काटने के बाद अवशेषों को एक साथ बिखेरने की आवश्यकता होती है। कंबाइन हार्वेस्टर जिसमें फसल प्रबंधन हेतु मशीन एस एम एस लगी हुई है उसकी सहायता से फसल अवशेषों को छोटे–छोटे टुकड़ों में काटकर एक साथ बिछा दिया जाता है। रिवर्सिबल मिट्टी पलटने वाले हल, पहिएदार हैरो, रोटावेटर व स्ट्रा–चॉपर की सहायता से भी अवशेषों को भूमि में मिलाया जा सकता है। दूसरी विधि से फसल अवशेषों को जमीन में मिलाने के लिए गेहूँ के फसल की बुवाई हैप्पी सीडर व जीरो टिलेज मशीन द्वारा सीधे खड़े फसल अवशेषों में चापर/एस एम एस मशीन के द्वारा अवशेषों को एक साथ बिखेरने के बाद की जाती है। धान के अवशेषों को जमीन की सतह पर रखने से अनेक लाभ हैं, जैसे भूमि में नमी का संरक्षण, तापमान ठीक रहना, खरपतवारों का नियंत्रण व भूमि के स्वास्थ्य में सुधार होता है तथा इनसे उपज में बढ़ोत्तरी होती है। जीरो टिलेज तकनीक से

*वैज्ञानिक (फसल सुरक्षा), **वैज्ञानिक (कृषि प्रसार), **वरिष्ठ वैज्ञानिक एवं अध्यक्ष, ***वैज्ञानिक (पशु विज्ञान), कृषि विज्ञान केन्द्र, सोहना, सिद्धार्थ नगर

परंपरागत विधि की अपेक्षा गेहूँ की बुवाई समय पर करने में सहायता मिलती है, जिससे आमदनी में बढ़ोत्तरी होती है। फसल अवशेषों को जमीन पर बिछाने के लिए कंबाइन हार्वेस्टर, भूसा प्रबंधन मशीन की अपेक्षा जीरोटिल कम फर्टीड्रिल व हैप्पी सीडर मशीन उपयुक्त पाई गई है।

(ख) धान के भूसे को खेत से इकट्ठा करके निकालना

धान की स्टबल सेवर (ठूंठों को काटने वाली मशीन), हे–रैक (भूसा इकट्ठा करने वाली मशीन) व स्ट्राबेलर (ठूठों से गाठें बनाने वाली मशीन) की सहायता से खेत से इकट्ठा करके निकाला जाता है। कंबाइन की सहायता से काटे गए धान के खेत से फसल अवशेषों को स्ट्राबेलर की सहायता से गाँठ बनाकर निकाला जा सकता है। बेल बनाने से पहले स्टबल सेवर मशीन की सहायता से धान को काटा जाता है। हे–रैक की सहायता से कटे हुए ठूँठ को इकट्ठा किया जाता है। इन ठूँठों को कंपोस्ट बनाने, मशरूम की खेती में उपयोग किया जा सकता है।

(2) भूसे से जैविक कंपोस्ट बनाना

इकट्ठे किए गए अवशेष से कंपोस्ट बनाने की विधि प्रयोग करके एक अच्छी किस्म का जैविक कंपोस्ट तैयार किया जा सकता है जो भूमि की उपजाऊ क्षमता को बढ़ाने में बहुत उपयोगी सिद्ध हो सकता है। भूसा बायोचार के रूप में परिवर्तित किया जा सकता है, जो कि जैविक खाद के रूप में अच्छा विकल्प हो सकता है क्योंकि इसमें पोषक तत्वों की प्रचुर मात्रा पाई जाती है।

(3) मशरूम उत्पादन में उपयोग

वर्तमान में बटन मशरूम, ढिंगरी ओयस्टर मशरूम व मिल्की मशमरूम उत्पादन के लिए मुख्य रूप से गेहूँ के भूसे का इस्तेमाल उत्तर प्रदेश में अधिक किया जाता है जबकि राज्य में मशरूम उत्पादन करने वाले जिलों में मशरूम उत्पादकों के लिए धान का भूसा व गेहूँ का भूसा एक अच्छा विकल्प है। मशरूम उत्पादन के बाद बचे हुए अवशेष को खाद के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है, इससे भूमि की उपजाऊ शक्ति बढ़ाने में मदद मिलती है।

धान के भूसे का औद्योगिक क्षेत्र में उपयोग

भूसा कई प्रकार के औद्योगिक क्षेत्रों में भी इस्तेमाल किया जा सकता है जिसका विवरण निम्न प्रकार से है

(1) जैविक ऊर्जा उत्पादन

धान के अवशेषों को जैविक ऊर्जा में बदलना संभव है इसमें मुख्य समस्या इनके उचित भंडारण एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने की है इस समस्या के निवारण हेतु पुवाल की गाँठें या गोलियाँ बनाई जा सकती हैं, जिसके लिए उचित मशीने उपलब्ध हैं। कृषि क्षेत्र से पैदा होने वाली फसल अवशेष व कचरे को जैविक विघटन, कंपोस्टिंग द्वारा टिकाऊ प्रभावकारी, पर्यावरण अनुकूल व आर्थिक रूप से उपयोगी तकनीक के जरिए जैविक इथेनॉल व जैविक गैस पैदा करने में उपयोग करके अवशेष व कचरे की समस्या के समाधान के साथ–साथ ऊर्जा की कमी की समस्या को भी हल किया जा सकता है। इकट्ठा किए हुए अवशेष का इस्तेमाल बायोगैस, बिजली पैदा करने व ईंट भट्टों में इस्तेमाल किया जा सकता है।

(2) ब्रीकेट्स व पेलेट्स बनाने में उपयोग

ब्रीकेट्स एक ऐसी तकनीक है जिसमें भूसे की नमी को कम करके उसे प्रेशर विधि से समान आकृति के पैलेट तैयार किया जाते हैं जिससे कि उन्हें आसानी से कम खर्च के साथ एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाया जा सके जिससे उनका समुचित भंडारण किया जा सके। इसको चारे की कमी वाले क्षेत्रों में चारे के रूप में या उद्योगों में गैस बनाने हेतु ईंधन के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है।

(3) भूसे से पैकिंग व ताप रोधी पदार्थों का निर्माण

औद्योगिक इकाइयाँ भूसे का इस्तेमाल तार बनाने, पैकिंग पदार्थ बनाने व ताप रोधी पदार्थ बनाने में

इस्तेमाल कर सकती हैं। ऐसा करनेसे रोजगार का सृजन होने के साथ–साथ भूसा का समुचित उपयोग करने में भी सहायता मिलेगी।

भूसे के उचित उपयोग हेतु सरकार के स्तर पर नीति निर्धारण

सरकार के स्तर पर उचित फसल अवशेष प्रबंधन नीति द्वारा अवशेषों का समुचित प्रबंधन व उपयोग किया जा सकता है। निम्नलिखित विषयों पर ध्यान केंद्रित किए जाने की आवश्यकता है।

(1) धान के भूसे व अन्य कृषि अवशेषों के फसल प्रबंधन व उपयोग हेतु उचित व पर्याप्त मशीनों की उपलब्धता, जैविक ऊर्जा व जैविक कंपोस्ट इकाइयों की स्थापना, भंडारण की उचित व्यवस्था के संबंध में सरकार के स्तर पर एक उचित नीति निर्धारक योजना की अति आवश्यकता है। इस दिशा में सरकार धान उगाने वाले क्षेत्रों में कस्टम हायरिंग आधार पर चलने वाले केंद्रों को अधिक से अधिक संख्या में स्थापना करके किसानों को संबंधित मशीनें विशेष अनुदान प्रदान करके उपलब्ध करवा सकती हैं।

(2) सरकार जैविक ऊर्जा एवं जैविक कंपोस्टिंग व उनसे संबंधित अन्य इकाइयों की स्थापना सरकारी व गैर सरकारी संस्थानों की भागीदारी द्वारा कर सकती है तथा इस विषय में पूँजी प्रदातों को जरूरी सहायता प्रदान करने के लिए प्रोत्साहित कर सकती है।

(3) धान की खेती करने वाले किसानों को भूसा जलाने से होने वाले दुष्परिणाम से अवगत करवाने हेतु जागरूक करने की अति आवश्यकता है।

(4) भूसे को खेत में ही प्रबंधन करने वाले किसानों को विशेष अनुदान प्रदान करने की अति आवश्यकता है।

(5) भूसे के जलाने से होने वाले नुकसान का भूमि व पर्यावरण पर पड़ने वाले प्रभाव व भूसे को भूमि में मिलाने व सतह पर रखने तथा अनुसंधान को बढ़ावा देने की जरूरत है ताकि इनका समुचित प्रयोग किया जा सके।

(6) उत्पादन में कमी किए बगैर कम भूसा पैदा करने वाली किस्में जो कि जल्दी पककर तैयार हो जाए विकसित करने की जरूरत है।

(7) धान के विकल्प के तौर पर खरीफ की अन्य फसलों व बागवानी फसलों को भी बढ़ावा दिया जाए। इन्हें उचित मूल्य पर खरीदने के व्यापक प्रबंध किए जाएं ताकि किसान इन फसलों की खेती को अपनाने के लिए प्रेरित हों।

किसानों, वैज्ञानिकों, प्रसार कार्यकर्ताओं व नीति निर्धारकों के समर्पण एवं सतत प्रयासों से फसल अवशेष जलाने की समस्या से निजात पाया जा सकता है, ताकि हमारी आगामी पीढ़ियों के सुखद भविष्य हेतु बेहतर वातावरण, मृदा स्वास्थ्य एवं फसल उत्पादकता प्राप्त की जा सके।●

पृष्ठ 03 का शेष

- खरपतवारों को नष्ट करने हेतु स्प्रे करने में फ्लैटफैन या कट नोजल का इस्तेमाल लाभदायक होता है।
- गेहूँ की फसल की बुवाई के समय, ड्रिल की नमी पर विशेष ध्यान रखना चाहिये क्योंकि इसके रूकने पर बुवाई ठीक प्रकार से नहीं हो पाती, जिसका गेहूँ की पैदावार पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा।
- बुवाई के बाद कूँड़ को ढकने इत्यादि की आवश्यकता नहीं है। किसान भाई निश्चिन्त रहें, गेहूँ का जमाव ठीक होगा तथा पैदावार भी अच्छी प्राप्त होगी। बीज का उपचार किया गया है, अतः चिड़ियों से नुकसान की संभावना नही है।●

धान की कटाई व मड़ाई उपरांत प्रबंधन

डॉ. अंकित तिवारी*, राघवेंद्र सिंह*, नंदन सिंह*, डॉ सौरभ वर्मा* एवं प्रो. ए.पी. राव*

धान विश्व की एक अति महत्वपूर्ण खाद्यान्न फसल है। धान विश्व की कुल जनसंख्या के 60 प्रतिशत से अधिक का मुख्य भोजन है। इसे अधिकांशतः एशियाई महाद्वीप के विभिन्न देशों में उगाया तथा खाया जाता है। धान की फसल एशियाई देशों में प्रमुख खाद्यान्न के रूप में प्रयोग की जाती है। धान के सूखे पौधे का उपयोग पशुओं के लिए चारे तथा छप्पर बनाने में किया जाता है। धान की भूसी का उपयोग बिजली उत्पादन हेतु तापग्रहों में भी किया जाता है। धान के अधिकतम उत्पादन के लिए फसल प्रबंधन तो महत्वपूर्ण है ही परन्तु धान की सही समय पर समुचित रूप से कटाई व कटाई उपरांत समुचित रख रखाव भी उतना ही आवश्यक है।

कटाई व मड़ाई

समय का आंकलन नमी के आधार पर भी किया जा सकता है। एक बाली में लगभग 85–90 प्रतिशत दानों के परिपक्व होने पर कटाई करना लाभकारी होता है और उनमें नमी 15–20 प्रतिशत हो, वह समय उपयुक्त होता है। जब धान के पौधे की बाली में दाने कठोर हो जायें तो फसल की कटाई का यह उपयुक्त समय होता है तथा बिना किसी देरी किये फसल की कटाई तुरंत करनी चाहिए। कटाई में देरी करने से पौधे की बालियों से दानों का बिखरना प्रारम्भ हो जाता है जिससे उपज में हानि होने की सम्भावना रहती है। कटाई दरांती से जमीन की सतह से 15–20 सेमी ऊपर करनी चाहिए। धान की कटाई के लिए शक्ति चालित यंत्रों जैसे रीपर/कंबाइन हार्वेस्टर आदि का प्रयोग भी किया जाता है। कटाई के समय इस बात का भी ध्यान रखना जरूरी है कि फसल की क्षति कम से कम हो। इसके लिए कटाई के उपरांत ध्यान देना जरूरी है जैसे कटाई के बाद वर्षा से बचाव, चूहों, पक्षियों के आक्रमण से बचाव करना चाहिए।

मड़ाई का अर्थ है धान की बालियों और पुवाल से दानों को अलग करना। मड़ाई साधारणतया हाथ से पीटकर की जाती है। फसल की कटाई के पश्चात धान के पौधों को खेत में एक ही स्थान पर एकत्र कर लेते हैं। डंडों की सहायता से इकट्ठा किये गए पौधों के बण्डलों को पीट–पीट कर पौधों से अनाज को अलग कर लिया जाता है। शक्तिचालित थ्रेशर का उपयोग भी बड़े किसान मड़ाई के लिए करते हैं। कंबाइन के द्वारा कटाई एवं मड़ाई का कार्य एक साथ हो सकता है। मड़ाई के बाद दानों की सफाई कर लेते हैं। मड़ाई के पश्चात धान की फसल को साफ करना आवश्यक है। इस कार्य के लिए ओसाई यंत्र का प्रयोग करने से कम समय में बड़े से बड़े ढेर की सफाई संभव हो पाती है।

भण्डारण

वर्ष भर धान की आपूर्ति होती रहे इसलिए इसका भण्डारण बहुत ही महत्वपूर्ण है। सफाई के बाद धान के दानों को अच्छी तरह सुखाकर ही भण्डारण करना चाहिए। भण्डारण से पूर्व दानों को 12–14 प्रतिशत नमी तक सुखा लेते हैं। भण्डारण की अवधि के अनुसार जैसे लम्बे समय के लिए 12 प्रतिशत व कम अवधि के लिए 14 प्रतिशत नमी प्रतिशत रखना उचित रहता है। भण्डारण के समय अनाज व बीज को कीट काफी हानि पहुँचाते हैं। भंडार में कुछ कीट आंतरिक तो कुछ बाह्य भक्षी होते हैं। ऐसे कीट जो बीज को सर्वप्रथम क्षति पहुँचाने में सक्षम होते हैं जैसे सूँड़ वाली सुरसुरी व अनाज का छोटा छिद्रक प्रजातियाँ प्रमुख हैं वे प्राथमिक कीट में आते हैं तथा जो गौड़ कीट बाहर रहकर अन्य भाग को क्षति पहुँचाते हैं जैसे खपरा बीटल, चावल का पतंगा आदि प्रमुख हैं, यह बाह्य भक्षी में आते हैं। बीजों को बचाने हेतु समय–समय पर

शेष पृष्ठ 19 पर

*प्रसार निदेशालय, आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या–224229

वैज्ञानिक विधि से गोबर की खाद, कम्पोस्ट एवं हरी खाद बनाना

सुधाकर सिंह*, नंदन सिंह**, प्रो. ए.पी. राव*** एवं डॉ नीरज कुमार****

जैसा कि हम सभी जानते हैं कि खाद फसलों और पौधों के समुचित विकास के लिए बहुत आवश्यक है। हमारे देश में खादों का प्रयोग बहुत पहले से होता आ रहा है लेकिन विगत कुछ दशक से खादों का स्थान रसायनिक उर्वरकों ने ले लिया जिससे कि उत्पादन में तो आशातीत वृद्धि हुई लेकिन हमारा उत्पादन स्थिर हो गया और कहीं न कहीं उत्पादन में कमी आ गयी उसका मुख्य कारण कार्बनिक पदार्थ की कमी है जिसके कारण मृदा की भौतिक, रसायनिक और जैवीय दशा असन्तुलित हो गई है। इसलिए आज के वर्तमान समय में जरूरी है कि हमारे किसान भाई अधिक से अधिक खाद का प्रयोग करें और रसायनिक उर्वरकों से बचें। जिससे मृदा में रहने वाले लाभदायक जीवाणु के साथ ही साथ पोषक तत्वों की उपलब्धता भी बढ़े और मृदा स्वास्थ्य की दशा में सुधार हो सके। इसी क्रम में हमारे किसान भाइयों को विभिन्न प्रकार के पदार्थों से खाद बनाने के बारे में संक्षिप्त में जानकारी दी जा रही है।

गोबर की खाद

भारत में प्रयोग किया जाने वाला गोबर जैविक खादों के लिए सबसे ज्यादा उपयुक्त माना जाता है। इस खाद में अधिकांशतः पशुओं का गोबर, मूत्र, पशुशाला का कूड़ा–कचरा, बचा हुआ पशुचारा, ठंडी के समय में प्रयोग किया जाने वाला पुवाल (बिछावन) आदि मिला रहता है। लेकिन गोबर की मात्रा अधिक होने के कारण इसे गोबर की खाद कहते हैं।

गोबर की खाद बनाने की विधि

गोबर की खाद प्रायः दो विधियों से बनाई जाती है

(1) खुली जगह में ढेर बना कर

सामान्य रूप से पशुओं के गोबर को प्रतिदिन एकत्र करके गाँव के बाहर खुले स्थान पर ढेर लगा देते हैं। गोबर के साथ पशुओं द्वारा छोड़ा गया चारा एवं कूड़ा कचरा भी इसमें मिला होता है। गोबर का ढेर खुला होने के कारण सूर्य का प्रकाश और वर्षा का पानी इसमें मिल जाने से सभी पोषक तत्वों की हानि हो जाती है। इस विधि से बनी खाद अच्छी नहीं होती है। अतः हम इस लेख के माध्यम से संदेश देना चाहते हैं कि हमारे किसान भाई इस विधि का प्रयोग कदापित न करें।

(2) गड्ढा विधि

यह विधि हमारे किसान भाइयों के लिए बहुत ही अच्छी मानी जाती है। यह खाद हमेशा गड्ढे में तैयार की जाती है। गड्ढा खोदते समय किसान भाइयों को इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि गड्ढा थोड़ी ऊँचाई वाले स्थान पर हो, जिससे कि उसमें बरसात का पानी न जा सके। गड्ढे का आकार पशुओं की संख्या पर निर्भर करता है। प्रयास यह करना चाहिए कि एक बड़े गड्ढे की अपेक्षा छोटे छोटे गड्ढे ज्यादा उपयुक्त रहते हैं। सामान्यतः गड्ढे का आकार 3 मीटर लंबा, 2 मीटर चौड़ा और 1 मीटर गहरा होना चाहिए, सीमेंट का बना हुआ गड्ढा अति उत्तम माना जाता है, क्योंकि इसमें पोषक तत्वों का रिसाव नहीं हो पाता है। इसमें गाय, भैंस आदि से निकला हुआ गोबर, मूत्र, बिछावन आदि भर देते हैं। जब गड्ढा भर जाए तब हम इसे लगभग 6 सेमी मोटी मिट्टी की तह से ढक देते हैं। यही प्रक्रिया हमें हर गड्ढे में करनी चाहिए गोबर की खाद लगभग 5 से 6 महीने में बनकर तैयार हो जाती है, जिसमें औसत रूप से 0.5 प्रतिशत नाइट्रोजन, 0.3 प्रतिशत फॉस्फोरस, 0.5 प्रतिशत पोषक तत्व पाए जाते हैं।

*शोध छात्र (शस्य विज्ञान), **शोध छात्र (मृदा विज्ञान), ***निदेशक प्रसार, ****सह प्राध्यापक (मृदा विज्ञान) आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या–224229

कम्पोस्ट खाद

यह खाद प्रायः मनुष्यों एवं पशुओं के मल, मूत्र, पेड़–पौधों के अवशेषों जैसे पत्तियाँ, टहनी आदि जब सूखकर गिरती हैं तब उसे इकट्ठा करके, गाँव और घरों से निकले हुए कूड़े कचरे को जीवाणुओं द्वारा सड़ा गला कर बनाया जाता है। कम्पोस्ट बनाने की विभिन्न विधियाँ हैं जैसे इन्दौर विधि, बैंगलोर विधि, एडको विधि, एमटिवेटेड कम्पोस्ट विधि आदि।

लेकिन वर्तमान समय में गोबर अथवा पशुओं के मल मूत्र में कुछ आवश्यक अवयव उपस्थित ही नहीं होते हैं अतः कम्पोस्ट दो प्रकार से तैयार किया जाता है।

(1) टाउन कंपोस्ट

इस प्रकार के कंपोस्ट में शहरों का कूड़ा कचरा, बाजारों का कचरा, सड़कों का कूड़ा करकट आदि को मिला कर बनाया जाता है।

(2) फार्म कंपोस्ट

इसमें खेत खलिहान से प्राप्त पुवाल, घास–पात, बाजरा, सरसों, तम्बाकू, चना, मटर, सनई आदि के डंठल को पशुओं की बिछावन के साथ मिलाकर बनाया जाता है।

हरी खाद

हरी खाद बनाने के लिए किसान भाई खेत में सनई ढैंचा, उर्द, मूँग लोबिया आदि फसलों की जुताई कर देना चाहिए और इनका विघटन सूक्ष्म जीवाणुओं द्वारा भूमि में दबा देने से होता है, जो कार्बनिक पदार्थ के रूप में उपलब्ध होकर पोषक तत्व प्रदान करता है। इसमें सभी प्रकार के पोषक तत्व पाए जाते हैं। हरे पौधे या उसके भाग को मृदा में दबा देने से जो खाद प्राप्त होती है उसे हरी खाद कहते हैं।

हरी खाद बनाने की हमारे किसान भाइयों के लिए दो विधियाँ हैं।

(1) खेत में फसल उगाकर उसी में जोत देना

यह विधि उन किसान भाइयों को प्रयोग करना चाहिए जिसे उसी खेत में मिलाना हो उसके लिए मुख्य फसल बोने से एक माह पहले मिट्टी को पटेला से दबा देना चाहिए और फिर मिट्टी पलट हल से दबा देना चाहिए, सभी हरे पौधे मिट्टी में दब जाएँगे और कुछ दिन में सड़कर खाद बन जाएँगे।

(2) उगाये गए स्थान से दूर खेत में हरी खाद बनाना

इस विधि में हमारे किसान भाइयों को एक स्थान में उगाकर दूसरे स्थान पर जिस खेत में मिलाना हो ले जाकर मिट्टी पलट हल से दबा देते हैं इसमें पेड़ों की हरी पत्ती एवं शाखाएँ भी एकत्रित करके खेत में दबाये जाते हैं ऐसी विधि का प्रयोग उन क्षेत्रों में करना चाहिए जहाँ जल का अभाव होता है। इसमें सड़क के किनारे उगे हुए खरपतवार का भी हरी खाद के रूप में प्रयोग करते हैं।●

(पृष्ठ 6 का शेष)

- मिश्रित खेती को अपनाना चाहिए जिससे रोग जल्दी से फैल न सके।
- बीजोपचार व भूमि उपचार करके ही फसल की बुवाई करें।
- रोग फैलने की आशंका वाले स्थानों पर रोग प्रतिरोधक क्षमता वाली किस्मों का ही चुनाव करें।
- रोग ग्रस्त पौधों को उखाड़कर जला दें।
- रोग फैलते ही शीघ्र ही उचित दवा का छिड़काव शुरू कर दें।
- अधिक पानी देने से फसल पीली पड़ जाती है जिससे रोग का प्रकोप बढ़ जाता है। अतः उचित जल निकास की व्यवस्था के साथ ही पर्याप्त सिंचाई का प्रयोग करें।
- फसलों का संतुलित पोषण करें। पोषक तत्वों की अधिकता या कमी से रोगों को प्रकोप बढ़ता है।●

जैविक खेती में केंचुआ खाद (वर्मी कंपोस्ट) का महत्व

डॉ. महेश पाल* एवं डॉ. अरविन्द कुमार सिंह**

केंचुआ प्राचीन काल से ही किसान का मित्र रहा है। केंचुआ खेत में उपलब्ध अध–सड़े गले कार्बनिक पदार्थों को खाकर अच्छी गुणवत्ता की खाद तैयार करते रहते हैं। यह मृदा में जीवाणु कवक, प्रोटोजोआ, एक्टीनोमाइसिटीज आदि की अपेक्षित वृद्धि में भी सहायक होते हैं। आज से 25–30 वर्ष पूर्व हमारी भूमियों में केंचुआ काफी संख्या में पाये जाते थे किन्तु आज बागों, तालाबों में ही केंचुआ रह गया है। केंचुआ की दिन–प्रतिदिन घटती जा रही संख्या के कारण ही भूमि उर्वरता में कमी आती जा रही है। शायद यही कारण है कि जैविक एवं टिकाऊ कृषि में पुनः केंचुआ खाद याद आ रही है।

केंचुआ खाद का उद्देश्य

(1) गोबर एवं कूड़ा–कचरा को खाद के रूप में बदलना।

(2) रसायनिक खादों के प्रयोग में कमी लाना।

(3) भूमि की उर्वरता शक्ति बनाये रखना।

(4) उत्पादन में आयी स्थिरता को समाप्त कर उत्पादन बढ़ाना।

(5) भूमि कटाव को कम करना तथा भूमिगत जल स्तर में बढ़ोत्तरी।

(6) बेरोजगारी को कम करना।

(7) भूमि में पाये जाने वाले सूक्ष्म जीवाणुओं को बढ़ाना।

(8) भूमि की जल धारण क्षमता में वृद्धि करना।

वर्गीकरण

सम्पूर्ण विश्व में केंचुओं की अनुमानित 4000 प्रजातियाँ पायी जाती हैं, जिसमें लगभग 3800 प्रजातियाँ जल में रहने वाली एवं 200 प्रजातियाँ भूमि में रहने वाली हैं। भारत वर्ष में लगभग 500 प्रजातियाँ पायी जाती हैं। उद्भव एवं विकास के आधार पर केंचुओं को उच्च अकशेरूकी समूह में रखा गया है। जिसका फाइलम, एनिलिडा क्लास–ओलिगो कीटा तथा आर्डर–लिनिकोली है। मुख्यतः केंचुए तीन प्रकार के होते हैं

(1) एपीजीइक

यह भूमि के ऊपरी सतह पर रहते हैं।

(2) एनीसिक

भूमि की मध्य सतह पर पाये जाते हैं अथवा रहते हैं।

(3) एण्डोजीइक

यह जमीन की गहरी सतह पर रहते हैं।

विश्व में पाई जाने वाली केंचुओं की समस्त प्रजातियाँ पर्यावरण के अनुसार उपयोगी है। भूमि में पायी जाने वाली समस्त 200 प्रजातियाँ भूमि को जीवन्त बनाये

सारिणी–1
वर्मी कम्पोस्ट बनाने के लिए उपयोगी वर्ग

कुल	जाति	प्रजाति
यूटलिडी	लुम्बियस	रूबेलस
	यून्डिलस	यूजिनी
लुब्रिसीडी	आइसीनिया	फोटिडा
	आइसीनिया	एन्डेरी
गेगास्कोल्सिडी	पेरिओनिक्स	एक्सकेक्टिस
	लैम्पिटो	मोरिटि
मोलिलोगैस्ट्डी	द्रविडा	विल्लसि

रखने में अपना महत्वपूर्ण योगदान देती है, किन्तु भूमि में केंचुओं की कमी हो गयी है अथवा भूमि में केंचुए सामाप्त हो गये हैं तो बात आती है कि केंचुओं की उन प्रजातियों का चयन किया जाय जो गोबर एवं घास फूस पेड़ पौधों की पत्तियों को आसानी से खाकर खाद बना सकें। अतः वर्मी कम्पोस्ट (केंचुआ खाद) बनाने के लिए उपयोग में आने वाले वर्ग सारिणी–1 में वर्णित है

*विषय वस्तु विशेषज्ञ (कृषि प्रसार), **कार्यक्रम समन्वयक, कृषि विज्ञान केन्द्र, बगही, संत कबीर नगर

उपरोक्त रूबेकस, यूजिनी, फोटिडा, एन्डेरी, एक्सकेक्टिस, मीरिटि व विल्लसि 7 प्रकार के केंचुओं को खाद बनाने के लिए प्रयोग में लाया जाता है, किन्तु खाद बनाने की क्षमता एवं वृद्धि तथा मौसम की प्रतिकूलता को सर्वाधिक सहन कर सकने के कारण इस कार्य में मुख्यत आइसीनिया फोटिडा एवं यूडिलस यूजिनी दो प्रजातियाँ सर्वाधिक उपयुक्त पायी जाती हैं।

(1) यूडिलस यूजिनी

इसका प्रयोग दक्षिण भारत इलाके में सर्वाधिक होता है इसकी विशेषता यह है कि निम्नतम् तापमान सहन करने के साथ–साथ छायादार स्थिति, बैगनी पशु के मांस की तरह होता है। लम्बाई 4 से 14 सेमी तथा व्यास 5 से 8 मिमी तक होता है। यह 40 दिन में वयस्क हो जाते हैं तथा अधिकतम उम्र तीन वर्ष तक होती है। यह अनुकूल परिस्थितियों में 46 दिन तक तीन दिन अन्तराल पर 1–4 कोकून बनाता है। इसके एक कोकून से 1 से 5 केंचुए निकलते हैं।

(2) आइसीनिया फोटिडा

इसका प्रयोग खाद बनाने में सबसे अधिक किया जा रहा है। इसे रेड वर्म के नाम से जाना जाता है। यह लाल भूरे बैंगनी रंग के होते हैं इनके पृष्ठ भाग पर रंगीन धारियाँ दिखाई देती हैं। इनकी लम्बाई 4 से 13 सेमी तथा रखरखाव आसान होता है। परिपक्व केंचुआ का वजन 1.5 से 2 ग्राम तक होता है। यह कोकून से निकलने के 55 दिन में वयस्क होकर कोकून बनाना आरम्भ कर देते हैं। तीन दिन के अन्तराल पर एक कोकून बनाता है जो 23–24 दिन में हैचिंग के उपरान्त केंचुआ बनता है।

वर्मीखाद उत्पादन तकनीकी

वर्मी खाद बनाने की प्रक्रिया में निम्नांकित बातों का ध्यान देना आवश्यक है

(1) स्थान का चुनाव

जिन स्थानों पर वर्षा का पानी एकत्र न होता हो उन स्थानों का चुनाव करना चाहिए तथ आस–पास स्वच्छ पानी होना चाहिए ताकि कार्बनिक पदार्थों को हमेशा नम रखा जा सके, चूँकि सदैव निगरानी की आवश्यकता पड़ती है। अतः घर के आसपास ही यह कार्य करना उचित है।

(2) केंचुए की प्रजाति का चुनाव

खाद बनाने के लिए केंचुए की उन प्रजातियों का चुनाव करना चाहिए जो कार्बनिक पदार्थों को अधिक मात्रा में खाने की क्षमता रखते हों तथा जो मौसम के उतार चढ़ाव को सहन कर सकें तथा प्रजनन क्षमता भी अच्छी हो।

(3) कार्बनिक अपशिष्टों का चयन

जिस जगह यह कार्य प्रारम्भ किया जा रहा हो उस स्थान पर कार्बनिक अपशिष्टों की उपलब्धता, जैसे गोबर, हरा पदार्थ, पेड़ पौधों की पत्तियाँ उचित मात्रा में एवं सस्ती कीमत पर उपलब्ध हों।

(4) भण्डारण की व्यवस्था

व्यवसायिक स्तर पर भण्डारण के लिए छायादार शेड उपलब्ध होना आवश्यक है ताकि तैयार खाद को एकत्र कर उचित नमी बनाये रखते हुए भण्डारित किया जा सके। क्योंकि वर्मी कंपोस्ट में नमी कम होने अथवा कंपोस्ट सूख जाने पर इसकी गुणवत्ता प्रभावित होती है।

(5) शत्रुओं से बचाव

केंचुए के काफी प्राकृतिक शत्रु है जैसे मनुष्य (मछली पकड़ने) सर्प, मेंढक, छिपकली, चिड़ियां यह सभी केंचुओं को अधिक खाते हैं। दीमक, लाल चीटी यह केंचुए को क्षति पहुँचाते हैं। अतः इनके द्वारा क्षति को रोकने के सम्पूर्ण प्रयास की आवश्यकता होती है।

(6) उत्पादन के उपयोग की व्यवस्था

तैयार खाद को कहाँ उपयोग किया जाना है इसकी योजना पहले से बनाना आवश्यक है। यदि स्वयं खेती में प्रयोग करना हो तो आवश्यकता के अनुसार ही योजना बनानी चाहिए। यदि बाजार में बेचना हो तो मार्केटिंग की व्यवस्था की रणनति तैयार करना तथा रेडवर्म को बेचना हो तो मार्केटिंग की व्यवस्था की रणनीति तैयार करना तथा रेडवर्म को बेचने की व्यवस्था करना आवश्यक है।

(7) उत्पादन इकाई संरचना निर्माण

50 से 75 टन प्रतिवर्ष वर्मी कंपोस्ट उत्पादन हेतु 12 गुणा 20 फीट आकार शेड लगाया जाता है ताकि छाया बनी रहे और वर्षा का पानी अंदर न आये। संपूर्ण प्लेटफार्म के चारों ओर 2 फीट ऊँची दीवार बनाकर दीवार के ऊपर से शेड की ऊँचाई तक मुर्गा जाली लगानी आवश्यक है। ताकि केंचुए के दुश्मनों से केंचुओं को बचाया जा सके। अन्दर जाने के लिए एक दरवाजा भी आवश्यक जिसे सदैव बन्द रखना चाहिए।

(8) बेड निर्माण

निर्माण किये गये प्लेटफार्म में 3 गुणा 18 फीट की तीन बेड 4 इंच मोटी बालू अथवा बजरी के ऊपर 1 से 2 इंच मोटी परत घास फूस की लगा देनी चाहिए। इसके उपरान्त 2 फीट चौड़ी 1.5 फीट ऊँची बेड गोबर एवं अन्य कार्बनिक अपशिष्टों की लगानी चाहिए।

(9) रेड वर्म का प्रयोग

तैयार तीन बेडों में अनुमानित 18–20 कुन्तल कार्बनिक अपशिष्ट प्रयोग किया जाता है। इस प्रकार क्यारी जो 2 गुणा 15 गुणा 18 फीट की है, में अनुमानित 6–7 कुन्तल गोबर एवं अन्य पदार्थ प्रयुक्त किये जाते हैं, में 25–30 किग्रा रेडवर्म डाला जाता है जो इस क्यारी पदार्थ को अधिकतम एक माह में खा लेते हैं। इस प्रकार तीन बेडों में प्रयुक्त 20 कुन्तल गोबर एवं अन्य पदार्थों को 75 किग्रा रेड वर्म एक माह में खाद बनाने में समर्थ होते हैं। रेडवर्म अपने वजन के बराबर प्रतिदिन भोजन ग्रहण करते हैं। अतः रेडवर्म की मात्रा के आधार पर ही खाद की मात्रा आंकलन किया जा सकता ह। प्लेटफार्म के आकार पर खाद उत्पादन की मात्रा का कोई आंकलन नहीं किया जा सकता। खाद उत्पादन की मात्रा इस बात पर निर्भर करती है कि केंचुओं की कितनी मात्रा का कैसे प्रबन्धन किया गया है।

(10) कच्चे माल में क्या प्रयोग करें

(1) विभिन्न जानवरों का गोबर, भेड, बकरियों की मेंगनी, घोड़े की लीद, मुर्गी फार्म का कचरा।

(2) फसलों के तने पत्तियों खरपतवारों के अवशेष सड़ी गली बगीचे की पत्तियाँ, गन्ने की खोई आदि।

(3) लकड़ी का बुरादा, छाल, गूदा, कागज, केले की पत्तियाँ, रसोई घर का कूड़ा।

(4) बायोगैस संयंत्र से निकलने वाली सेलरी, खाद्य प्रसंस्करण इकाइयों का अपशिष्ट आदि।

सावधानियाँ

प्रति सप्ताह बेड एक बार हाथ अथवा पन्जे से पलट देना चाहि ताकि गोबर पलट जाये और वायु संचार हो जाये ताकि बेड में गर्मी न बढ़ने पाये।

किसी भी प्रकार ताजा गोबर न प्रयोग किया जाये क्योंकि ताजा गोबर गर्म होता है इससे केंचुए मर सकते हैं। बेड में सदैव 35–40 प्रतिशत नमी बनाये रखनी चाहिए इसके लिए समय–समय पर पानी का छिड़काव करते रहना चाहिए। वर्षा ऋतु में पानी छिड़कने की आवश्यकता बहुत कम पड़ती है। शरद ऋतु में दूसरे–तीसरे दिन पानी का छिड़काव एवं ग्रीष्म ऋतु में रोजाना पानी छिड़कना चाहिए। साँप, मेंढक, छिपकली से बचाव हेतु मुर्गा जाली प्लेटफार्म के चारों ओर लगानी चाहिए तथा दीमक चींटी से बचाव हेतु प्लेटफार्म के चारों तरफ नीम का काढ़ा प्रयोग करते रहना चाहिए।

सारिणी–2
वर्मी कंपोस्ट की मात्रा

फसल का नाम	वर्मी कंपोस्ट टन में प्रति एकड़
दलहनी फसल	2.2 टन बुवाई से पूर्व
तिलहनी फसल	3 टन बुवाई से पूर्व
मसाला एवं सब्जी फसल	4 टन बुवाई से पूर्व
फूल वाली फसल	5 टन बुवाई से पूर्व
फलदार पौधों में रोपण के समय	5 किग्रा / वृक्ष
गमलों में	मिट्टी के भार का 10 प्रतिशत
लान में	2 किग्रा प्रति वर्ग मीटर

बेड का तापमान 8 से 30 डिग्री सेन्टीग्रेड से कम ज्यादा न होने दिया जाये 15 से 25 डिग्री सेन्टीग्रेड तापमान पर यह सर्वाधिक क्रियाशील रहते हैं तथा खाद शीघ्र बनती है।●

आँवला की उन्नत किस्में

शशांक सिंह* एवं आकांक्षा सिंह**

आँवला (इण्डियन गूजबेरी) (एमब्लिका ऑफिसिनैलिस) विटामिन सी के सबसे प्रचुर स्रोतों में से एक है। इसके 100 ग्राम पल्प में 500 से 700 मिग्रा एस्कॉर्बिक एसिड पाया जाता है। यह अमरूद, टमाटर या खट्टे फल के विटामिन सी स्रोतों से ज्यादा है। आँवला एक सम उष्णकटिबन्धीय फल वृक्ष है जो जाड़ा तथा गर्मी दोनों मौसम को सहन करता है। यह भारतीय मूल का एक महत्वपूर्ण फल है। भारत के विभिन्न क्षेत्रों में इसे विभिन्न नामों, जैसे हिंदी में आँवला, संस्कृत में धात्री या अमलकी, बंगाली में उड़िया में, अमला या आमलकी, तमिल एवं मलयालम में नेल्ली, तेलगु में अमलाकामू, गुरूमुखी में अमोलफल तथा अंग्रेजी में ऐम्बलिक, माइरोबालान या इंडियान गूजबेरी के नाम से जाना जाता है। आँवले को प्रायः लोग औरा भी कहते हैं। इसकी बढ़वार के लिए वर्षा जरूरी है, लेकिन पौधे की जड़ों में पानी नहीं लगना चाहिए। इसके पौधे हिमालय की तराई से दक्षिण भारत के पहाड़ी इलाकों में जंगली रूप में मिलते हैं। दक्षिण भारत, उत्तर प्रदेश तथा बिहार राज्यों के कुछ भागों में इसकी खेती बागवानी के रूप में की जाती है, परन्तु ये भाग भी प्रायः छोटे–छोटे होते हैं। आँवला एक अत्यंत ही कठोर फलदार पौधा है जो सूखे एवं असिंचित क्षेत्रों में आसानी से उगाया जा सकता है। आँवले के फल, फूल, पत्ती, छाल, जड़ का बहुत ही औषधीय महत्व है। आँवले की विशेषताएं है, प्रति इकाई उच्च उत्पादकता 15–20 टन/हेक्टेयर) विभिन्न प्रकार की भूमि (ऊसर, बीहड़, खादर, शुष्क, अर्धशुष्क, कांडी, घाड़) हेतु उपयुक्त, पोषण एवं औषधीय (विटामिन सी, खनिज, फिनॉल, टैनिन) गुणों से भरपूर तथा विभिन्न रूपों में (खाद्य, प्रसाधन, आयुर्वेदिक) उपयोग के कारण आँवला 21वीं सदी का प्रमुख फल हो सकता है।

उन्नत किस्में

आँवला की उत्तम किस्मों का कोई वैज्ञानिक वर्गीकरण नहीं किया जा सकता है। पूर्व में आँवला की तीन प्रमुख किस्में यथा–बनारसी, फ्रांसिस (हाथी झूल) एवं चकैया हुआ करती थी। इन किस्मों की अपनी खूबियाँ एवं कमियाँ रही हैं। बनारसी किस्म में फलों का गिरना एवं फलों की कम भंडारण क्षमता, फ्रांसिस किस्म में यद्यपि बड़े आकार के फल लगते हैं परन्तु उत्तक क्षय रोग अधिक होता है। चकैया के फलों में अधिक रेशा एवं एकान्तर फलन की समस्या के कारण इन किस्मों की इन सब समस्याओं के निदान हेतु आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या ने कुछ नई किस्मों का चयन किया है जिनका संक्षिप्त विवरण निम्न है।

बनारसी

यह आँवले की प्रसिद्ध अगेती किस्म है। इसके पौधों की सीधी बढ़वार होती है। फलों का आकार बड़ा 50–60 ग्राम प्रति फल, सतह चिकनी हल्के पीले रंग का होता है। मादा फूलों की संख्या अपेक्षाकृत कम होती है। अतः प्रति पेड़ काफी कम फल पकड़ते हैं। विटामिन सी की मात्रा सर्वाधिक पायी जाती है। इसके फलों से व्यावसायिक स्तर पर मुरब्बा बनाया जाता है। इसके अधिकांश फल फट जाते हैं, जिस कारण इस किस्म को व्यवसायिक रोपण हेतु अनुशंसा नहीं की जाती है।

चकैया

यह आँवले की देर से पकने वाली किस्म है। इस किस्म के वृक्षों का फैलाव अधिक होता है। फल अपेक्षाकृत मध्यम आकार के चपटे 30–40 ग्राम प्रतिफल का होता है। इसके फल हरे रंग के चिकनी सतह वाले रेशेदार होते हैं। गूदा सख्त तथा रेशेदार

*सहायक प्राध्यापक, कमला नेहरू भौतिक एवं सामाजिक विज्ञान संस्थान, सुल्तानपुर, **शोध छात्रा, मानव पोषण विभाग, गोविन्द वल्लभ पंत कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, उधम सिंह नगर, पंतनगर, उत्तराखंड

होता है। मादा फूलों की संख्या अधिक होने के कारण फलन अच्छा होता है तथा फल शाखा से मजबूती से जुड़े रहते हैं, जिस कारण प्रारम्भिक अवस्था में गिरते नहीं है। इस किस्म की भंडारण क्षमता मध्यम होने के कारण अंचार तथा अन्य उत्पादनों के लिए उपयुक्त होती है। इस किस्म में क्षय व्याधि का प्रकोप नहीं होता है। इन्हीं सब गुणों के कारण इसकी व्यवसायिक बागवानी की अनुशंसा की जाती है।

फ्रांसिस (हाथीझूल)

इस किस्म के पौधों की शाखाएं तथा पत्तियाँ नीचे की ओर झुकी रहती हैं। यह मध्यम उत्पादन क्षमता एवं मध्यम समय में तैयार होने वाली किस्म है। इसके फलों का आकार मध्यम से बड़ा अंडाकार होता है, जिनके प्रति फल का वजन 40–50 ग्राम होता है। इनकी सतह चिकनी, हल्के हरे पीले रंग के मुलायम गूदे के तथा लगभग रेशाहीन होते हैं। मादा फूलों की संख्या अपेक्षाकृत मध्यम होती है। फलों की भंडारण क्षमता भी मध्यम होती है। इसके फलों में क्षय व्याधि का प्रकोप पाया जाता है। अतः मुरब्बा बनाने हेतु यह किस्म अच्छी नहीं होती है। इनमें सुहागे की कमी के कारण इनके फल काले पड़ने लगें तो 0.6 प्रतिशत सुहागा (बोरेक्स) का छिड़काव 10–12 दिनों के अंतर पर 2–3 बार कर देना चाहिए।

नरेन्द्र आँवला–4 (कंचन)

यह चकैया के बीजू पौधों से चयनित किस्म है। इसके पौधों का फैलाव अधिक होता है तथा इस किस्म में मादा फूलों की संख्या अधिक (4–7 मादा फूल प्रति शाखा) होने के कारण यह अधिक फल नियमित रूप से देती है। फल मध्यम आकार के गोल, छोटे एवं हल्के पीले रंग के व अधिक गूदायुक्त होते हैं। रेशायुक्त होने के कारण यह किस्म गूदा निकालने हेतु एवं अन्य परिरक्षित पदार्थ बनाने हुेत औद्योगिक इकाईयों द्वारा पसंद की जाती है। यह मध्यम समय में परिपक्व होने वाली किस्म है (मध्य नवम्बर से मध्य दिसम्बर) तथा महाराष्ट्र एवं गुजरात के शुष्क एवं अर्धशुष्क क्षेत्रों में सफलतापूर्वक उगायी जा रही है।

नरेन्द्र आँवला–5 (कृष्णा)

यह बनारसी किस्म से चयनित एक मध्यम किस्म है जो नवम्बर से मध्य दिसम्बर में पक कर तैयार हो जाती है। इसके फल औसतन बड़े आकार के, करीब 45 ग्राम प्रतिफल और ऊपर से तिकोने होते हैं। फलों की सतह चिकनी तथा हल्के पीले रंग की होती है तथा प्रकाश वाले हिस्से के फलों पर हल्के लाल या गुलाबी रंग के धब्बे पाये जाते हैं। फल का गूदा गुलाबी हरे रंग का, कम रेशायुक्त, सख्त अर्धपारदर्शक तथा अत्यधिक कसैला होता है। इसकी भंडारण क्षमता अच्छी होती है। अतः मुरब्बा हेतु यह एक सर्वोत्तम किस्म है। मादा फूलों की संख्या भी औसतन बनारसी से अधिक होती है जिस कारण मध्यम उत्पादन क्षमता वाली होती है। इस किस्म की व्यवसायिक बागवानी हेतु अनुशंसा की जाती है। यह किस्म मुख्यतः असम, बिहार, जम्मू और कश्मीर, उत्तराखंड, उत्तर प्रदेश, पश्चिम बंगाल, पंजाब, राजस्थान, हरियाणा, कर्नाटक, तमिलनाडु, आंध प्रदेश, गुजरात, महाराष्ट्र, छत्तीसगढ़, झारखंड, हिमाचल प्रदेश राज्यों के लिये अनुशंसित है।

नरेन्द्र आँवला–6 (अमृत)

यह चकैया किस्म से चयनित किस्म है जो मध्यम समय (मध्य नवम्बर से मध्य दिसम्बर) में पक कर तैयार हो जाती है। पेड़ फैलाव लिए अधिक उत्पादन देने वाले होते हैं। फलों का आकार मध्यम से बड़ा गोल, सतह चिकनी, हरी पीली, चमकदार, आकर्षक, गूदा रेशाहीन एवं मुलायम होता है। यह किस्म मुरब्बा, जैम एवं कैन्डी बनाने हेतु उपयुक्त पायी जाती है। यह किस्म मुख्यतः असम, बिहार, जम्मू और कश्मीर, उत्तराखंड, उत्तर प्रदेश, पश्चिम बंगाल, पंजाब, राजस्थान, हरियाणा, कर्नाटक, तमिलनाडु, आंध्र प्रदेश, गुजरात, महाराष्ट्र, छत्तीसगढ़, झारखंड, हिमाचल प्रदेश, मध्य प्रदेश राज्यों के लिये अनुशंसित है।

नरेन्द्र आँवला–7 (नीलम)

यह फ्रांसिस (हाथी झूल) किस्म के बीजू पौधों से चयनित एक उत्तम किस्म है। इस किस्म के पौधों की

बढ़वार सीधी होती है। यह शीघ्र फलने वाली, नियमित एवं अत्यधिक फलन देने वाली किस्म है। यह मध्यम समय में (मध्य नवम्बर से मध्य दिसम्बर तक) पक कर तैयार हो जाती है। यह किस्म उत्तक क्षय रोग से मुक्त है। मादा फूलों की संख्या सर्वाधिक होने के कारण इस किस्म की उत्पादन–क्षमता काफी अच्छी होती है। फलों का आकार मध्यम से बड़ा करीब 45–50 ग्राम प्रति फल होता है। फल ऊपर से तिकोने, चिकनी सतह तथा हल्के पीले रंग वाले होते हैं। गूदे में रेशे की मात्रा एन ए–6 किस्म से थोड़ी अधिक होती है। इस किस्म की प्रमुख समस्या अधिक फलत के कारण इसकी शाखाओं का टूटना है। अतः फल वृद्धि के समय शाखाओं में सहारा देना उचित होता है। मध्यम भंडारण क्षमता होने के कारण मुरब्बा बनाने के लिए यह एक उपयुक्त किस्म है। इसके अलावा यह किस्म च्यवनप्राश, चटनी, अचार, जैम एवं स्क्वैश बनाने हेतु अच्छी पायी गयी है। इस किस्म के पौधे रोपण के 3–4 वर्षों के बाद फल देने लगते हैं। बागवानी के लिए यह एक उत्तम किस्म है जो आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या से विकसित की गई है। इस किस्म को राजस्थान, बिहार, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश, उत्तराखंड, आंध्र प्रदेश, तमिलनाडु, छत्तीसगढ़, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, हिमाचल प्रदेश के क्षेत्रों में अच्छी तरह अपनाया गया है।

नरेन्द्र आँवला–10 (बलवंत)

यह किस्म बनारसी किस्म के बीजू पौधों से चयनित अधिक फलत देने वाली किस्म है। फल देखने में आकर्षक, मध्यम से बड़े आकार वाले, चपटे गोल होते हैं। सतह कम चिकनी, हल्के पीले रंग वाली गुलाबी रंग लिए होती है। फलों का गूदा सफेद हरा, रेशे की मात्रा अधिक एवं फिनाल की मात्रा कम होती है। अधिक उत्पादन क्षमता, शीघ्र पकने के कारण एवं सुखाने एवं अचार बनाने हेतु उपयुक्तता के कारण यह व्यवसायिक खेती हेतु उपयुक्त किस्म हैं, परन्तु इस किस्म में एकान्तर फलन की समस्या पायी जाती है। यह किस्म मुख्यतः बिहार, उत्तराखंड, उत्तर प्रदेश, पश्चिम बंगाल, पंजाब, राजस्थान, हरियाणा, कर्नाटक, तमिलनाडु, आंध्र प्रदेश, गुजरात, महराष्ट्र, छत्तीसगढ़, झारखंड, हिमाचल प्रदेश, मध्य प्रदेश के लिए अनुशंसित है।

नरेन्द्र आँवला–20

यह किस्म चकैया का क्लोन है। इसके वृक्ष मध्यम से लम्बे आकार एवं अधिक फैलाव की प्रकृति के होते हैं। फल आकार में बड़े और सतह चमकदार होती है। इसमें फाइबर की मात्रा बहुत कम होती है। यह किस्म मुख्यतः उत्तर प्रदेश, बिहार एवं उत्तराखंड क्षेत्रों के लिए अनुशंसित है।

लक्ष्मी–52

यह फ्रांसिस (हाथी झूल) किस्म के बीजू पौधों से चयनित किस्म है। यह एक अत्यधिक फलत वाली किस्म है। इसके पूर्ण विकसित पेड़ से प्रति हेक्टेयर 200–250 किग्रा की औसत उपज प्राप्त की जा सकती है। फल आकार में बड़े एवं उनके ऊपर छः धारियाँ पायी जाती है। प्रारंभिक चरण के दौरान फल हल्के गुलाबी रंग के होते हैं एवं पूर्ण परिपक्वता पर गायब हो जाते हैं। इस किस्म के फलों में उत्कृष्ट प्रसंस्करण की क्षमता होती है इसलिए यह सिरप और कैंडी तैयार करने के लिए उपयुक्त होते हैं।

गोमा ऐश्वर्या

यह किस्म केंद्रीय शुष्क बागवानी संस्थान, बीछवाल (बीकानेर) द्वारा विकसित की गई है। यह आँवले की एक अगेती और सूखा सहनशील किस्म है। इसकी औसत पैदावार 130 किग्रा प्रति पेड़ है। फलों में फाइबर की मात्रा कम होने के कारण यह प्रसंस्करण और निर्यात के लिए उपयुक्त किस्म है। फलों का आकार मध्यम करीब 45 ग्राम प्रति फल होता है। इसमें रस की मात्रा 47 प्रतिशत, गूदा गुठली का अनुपात लगभग 26, टी.एस.एस. (कुल घुलनशील ठोस) औसत 10^{0} ब्रिक्स और एस्कॉर्बिक एसिड की औसत मात्रा 555 मिग्रा प्रति 100 ग्राम पाई जाती है। यह किस्म मुख्यतः राजस्थान राज्य के लिये अनुशंसित है।

गुजरात आँवला–1

यह किस्म आनंद कृषि विश्वविद्यालय द्वारा वर्ष 1994 में विकसित की गयी है। यह किस्म मुख्यतः मध्य गुजरात कृषि जलवायु क्षेत्र–3 के लिए विकसित की गयी है। यह एक उच्च उपज और बेहतर गुणवत्ता (उच्च विटामिन सी) वाली किस्म है। प्रति वर्ष इसकी औसत पैदावार 100–140 किग्रा प्रति वृक्ष है। फल आकार में बड़ा (43 ग्राम) और गूदाः गुठली का अनुपात अधिक लगभग 1.98:1.00 है। पल्प में कुल घुलनशील ठोस (टी.एस.एस.) की मात्रा मध्यम (16.33 ब्रिक्स), विटामिन सी की मात्रा उच्च (815 मिग्रा/100 ग्राम) और अम्लता (1.90 प्रतिशत) होती है।

इन सब किस्मों के अलावा किसान चकला, हार्प–5, भवनी सागर आनंद–1, आनंद–2 एवं आनंद–3 किस्में विभिन्न शोध संस्थाओं से विकसित की गयी है परन्तु इनकी श्रेष्ठता देश के अन्य भागों में अभी सिद्ध नहीं हो पाई है।●

(पृष्ठ 10 का शेष)

उपयुक्त उपायों को अपनाकर कीट के प्रकोप को निर्धारित सीमा की नीचे रखा जा सकता है। वास्तव में कीट प्रबंधन का कार्य फसल की कटाई, मड़ाई व ढुलाई में प्रयोग किये जाने वाले यंत्रों व साधनों को कीट मुक्त रखना चाहिए एवं इस बात का भी विशेष ध्यान रखना चाहिए कि फसल कटने के बाद वर्षा या किन्हीं अन्य कारणों से बीज व अनाज भीगने न पाये अन्यथा भीगे हुए अनाज व बीजों में कीटों के लगने की संभावना अधिक बढ़ जाती है तथा इससे बचाव हेतु सबसे पहले भण्डारण कक्ष, गोदाम को साफ सुथरा व नमी रहित अर्थात सूखा रखना चाहिए। अगर अधिक प्रकोप की संभावना है तो कक्ष व गोदाम को साफ करने के पश्चात 4 लीटर मैलाथियान को 1000 लीटर पानी में (40 मिली प्रति लीटर पानी में) घोलकर छिड़काव करें। भण्डारण से पहले नमी की मात्रा सुनिश्चित करना चाहिए। भण्डार से पहले या बाद में भंडारित कीटों से बचाव का भी प्रबंध करना आवश्यक है। भंडारण हेतु विभिन्न पात्रों का प्रयोग किया जाता हैं। ये मिट्टी, लकड़ी, बांस, जूट की बोरियों ईंटों कपड़ों आदि के सामग्री से बनाए जाते हैं। लम्बी अवधि तक भण्डारण के लिए सही से रख–रखाव व समय–समय पर हवा का आवागमन करते रहना चाहिए।

अतः किसान भाई फसल की कटाई के समय इन सभी प्रबंधन की बातों को ध्यान में रखकर धान की अधिक उपज प्राप्त कर सकते हैं तथा अधिक लम्बे समय के लिए अनाज व बीजों का भण्डारण भी कर सकते हैं।●

पूर्वाञ्चल खेती पढ़िये : खेती में आगे बढ़िये

- फसलोत्पादन, सब्जी उत्पादन, बागवानी, मत्स्य तथा पशुपालन विषय की वैज्ञानिक जानकारी देने वाली लोकप्रिय मासिक पत्रिका पूर्वाञ्चल खेती। चाहे प्रगतिशील किसान हों, बागवान हों या मत्स्य/पशुपालक, अनुसंधान/प्रसार कार्यकर्ता अथवा कृषि संकाय के छात्र तथा साथ ही साथ सभी के लिये उपयोगी आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या, की हिन्दी मासिक पत्रिका पूर्वांचल खेती।
- पूर्वाञ्चल खेती की सदस्यता शुल्क रु0 270.00 मात्र (किसानों, छात्रों एवं लेखकों के लिए रू0 220.00 मात्र) है। जो निदेशक प्रसार, आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या को मनीआर्डर/नकद भुगतान द्वारा प्रेषित किया जाना चाहिए। सदस्यता शुल्क भेजते समय अपना नाम व पता स्पष्ट अक्षरों में लिखना न भूलें। आपका सुझाव उत्तरोत्तर सुधार हेतु प्रार्थनीय है।

प्रधान सम्पादक

कम वर्षा की परिस्थिति में औद्यानिक फसलों का प्रबंधन

राजन चौधरी* डॉ. सीता राम मिश्र* एवं मंजीत कुमार*

हमारे जीवन में फलों का बहुत महत्व है। हमारे शरीर में जाकर विटामिन, कैल्शियम आदि की कमी को पूरा करते हैं। एक प्रसिद्ध कहावत है कि ''प्रतिदिन एक सेब खाया जाए तो जीवन भर डॉक्टर की आवश्यकता नहीं रहती''। कहने का तात्पर्य यह है कि प्रतिदिन के आहार में फलों का उपयोग करने से व्यक्ति स्वस्थ रहता है। वर्तमान समय में हर मौसम के फल साल भर तक प्राप्त किए जा सकते हैं। फलों से जैम, जैली, स्क्वैश बनाकर उन्हें वर्ष भर उपयोग किया जा सकता है। मौसम में मिलने वाले रसीले और स्वादिष्ट फल खाने चाहिए। उनकी गुणवत्ता अधिक होती है अपेक्षाकृत जो शीत गृहों में स्टोर करके रखे जाते हैं।

आम

भारत में समुद्र तल से 1500 मीटर की ऊँचाई पर आम का वृक्ष लगाया जाता है। इसके उत्पादन के लिए 75 से 250 सेमी वार्षिक वर्षा और औसतन 28 डिग्री सेन्टीग्रेड का तापमान उपयुक्त माना जाता है। आम का फल जून से अगस्त के बीच उत्पादित होता है, आम की रोपण स्थिति के दौरान बेहतर परिणाम पाने के लिए उप मृदा सिंचाई के माध्यम से पौधों से 10 सेमी नीचे पिचर को रखते हुए जो भू–स्तर से 1 फुट नीचे हो, प्लास्टिक प्लेट द्वारा कवर करते हुए तथा लागू/पौधा/दिन 1.25 लीटर जल के साथ 3 सेमी व्यास पाईप के माध्यम से पहुँचाना चाहिए।

- काली पोलीथीन फिल्म (100 माइक्रोन) नमी के संरक्षण में मदद करती है तथा पैदावार में वृद्धि के साथ जड़ वृद्धि, फूल, फल की खेती एवं न्यूनतम फलों का गिरना रोकने में वृद्धि करती है।
- खुले वृताकार तालाब जिनकी दूरी पेड़ों के आस–पास 6–7 फुट तथा 9–12 इंच की चौड़ाई हो, के साथ–साथ सूखे आम के पत्ते के साथ तालाबों को मध्य एवं मल्चिंग करने के मध्य से वर्षा जल संचयन, फूल–फल बनने के दौरान मृदा में पर्याप्त आर्द्रता बनाए रखने में मदद करते हैं तथा पैदावार में वृद्धि करते हैं।
- फसल अपशिष्ट मल्च के साथ–साथ ड्रिप सिंचाई जल के संचयन में मदद करती है। जल की 0.6 की मात्रा के साथ ड्रिप सिंचाई एवं मल्च पैदावार में महत्वपूर्ण वृद्धि करती है। संरक्षित सिंचाई फल प्लास्टिक विकास अवधि के दौरान आवश्यक है।
- कई क्षेत्रों में उच्च तापमान दबाव के कारण, पत्तों का गिरना देखा गया है। पत्तों के गिरने को कम करने के लिए 0.2 प्रतिशत पोटैशियम सल्फेट का छिड़काव करें।

मानसून के आने में 30 दिन का विलम्ब

अगेती एवं मध्यम किस्मों में फल तैयार हो चुके होते हैं अतः फसल पर कोई भी विपरीत प्रभाव नहीं पड़ेगा। सोल्डर ब्रोवनिंग (फलों विकृति, फटने का दाग) का आपतन एवं कटाई के पश्चात संक्रमण भी न्यूनतम होंगे। फलों की गुणवत्ता बेहतर होगी। फलों का आकार एवं गुणवत्ता में देरी से पूर्ण विकसित होने वाली किस्में जैसे चौसा, मल्लिका एवं आम्रपाली आदि को प्रभावित करेंगे। आगे तापमान बढ़ोत्तरी होने पर जुलाई–सितम्बर के दौरान संबंधित मणि वर्षा सिंची एवं मल्चिंग का अनुसरण करते हुए फसल में प्रबंधन करें।

वानस्पतिक चरण पर वर्षा में कमी

वानस्पतिक अंकुर मौसम सुनिश्चित करते हुए संभावित फलों की शाखों के उत्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव। इसके लिए सिंचाई एवं मल्चिंग का अनुसरण करने की आवश्यकता है।

टर्मिनल सूखा

मौसम सुनिश्चित करते हुए फसल संभावना हल्की मृदा में प्रभावित होंगे, सूखे में पुनरावृत्ति से फसल को

*कृषि मौसम विज्ञान विभाग, आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या–224229

नुकसान होता है। परन्तु सिंचाई एवं मल्चिंग का अनुसरण करना आवश्यक है।

केला

केले का उत्पादन उष्णकटिबंधीय क्षेत्र में होता है, जहाँ तापमान 15 डिग्री सेन्टीग्रेड से कम न हो और न्यूनतम वार्षिक वर्षा 150 सेमी होती हो। तटीय मैदान तथा सिंचाई की सुविधा से युक्त प्रायद्वीपीय क्षेत्र की जलवायु केले के उत्पादन के लिए सर्वाधित उपयुक्त है।

- केले के पुष्पण स्तर पर मृदा नमी की कमी के कारण कम गुच्छे, कम संख्या तथा ऊँगली के छोटे आकार के केले का उत्पादन होता है। पुष्पण के दौरान जल की कमी के परिणामस्वरूप छोटे आकार तथा विक्रय करने के लिए अनुपयुक्त गुच्छे तथा गुच्छे के वजन में कमी तथा अन्य वृद्धि मापदंड प्रभावित होते हैं।
- ड्रिप के माध्यम से सिंचाई करने से, जल की कमी के प्रतिकूल प्रभाव को कम करने में मदद करती है।

पौध संरक्षण उपाय

न्यूनतम आर्द्रता के साथ उच्च तापमान फल वाली फसलों अर्थात आम, अंगूर तथा अनार में कीटों के प्रकोप जैसे माहू एवं माईटस को खत्म करने के लिए अनुकूल होते हैं। उपयुक्त मॉनिटरिंग एवं संस्तुत कीटनाशियों का समय से छिड़काव आपतन की उग्रता को कम करेगी। माहू के लिए कीटनाशियों जैसे थाएमेथेक्जाम 25 डब्ल्यूजी की दर 0.205 ग्राम/लीटर या ऐस्केट 75 एसपी की दर 1.5 ग्राम/लीटर का प्रयोग करना चाहिए। स्पीनोसड 45 प्रतिशत एससी 0.5 मिली/लीटर की दर से थ्रिप्स पर्याक्रमण को कम करेंगी। माइटस प्रबंधन के लिए 2.5 मिली/लीटर की दर से डीकोफोल 18.5 ईसी या 0.5 मिली/लीटर की दर से फेनोपाइरोक्सिमेंट का छिड़काव करें।

यदि मानसून के आने में 15 से 30 दिन विलम्बन हो

- प्रायः केले उगने वाले सभी क्षेत्रों में सामान्यतः सकर रोपण/टिश्यु कल्चर पौधों को मानसून की पहली बरसात के पश्चात रोपना शुरू करना चाहिए।
- चूँकि केले की फसल मानसून आधारित नहीं होती है, तदनुसार रोपण मानसून आने के आधार पर किया जा सकता है।

अमरूद

अमरूद की सफल खेती उष्ण कटिबंधीय और उपोष्ण कटिबंधीय जलवायु में सफलतापूर्वक की जा सकती है। उष्ण क्षेत्रों में तापमान व नमी के पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध रहने पर फल वर्ष भर लगते हैं। छोटे पौधे पर पाले का असर होता है। जबकि पूर्ण विकसित पौधे 44 डिग्री सेल्सियस तक का तापमान आसानी से सहन कर सकते हैं।

मानसून में 15 दिनों का विलम्ब है

अगेती शीतकालीन फसल प्रभावित होगी, इसलिए अनूपूरक सिंचाई और मल्चिंग करनी चाहिए।

मानसून में 30 दिनों का विलम्ब है

वर्षाकालीन फसल प्रभावित होगी (फल के आकार और गुणवत्ता में कमी), शीतकालीन फसल/पछेती शीतकालीन फसल के परिणाम प्रभावित होते हैं, लेकिन फल आकार और गुणवत्ता में सुधार होगा। अनुपूरक सिंचाई और मल्चिंग करें।

अधिक वर्षा के परिणामस्वरूप बाढ़

अधिक वानस्पतिक वृद्धि के परिणामस्वरूप पुनरुत्पादन उपज में कमी, दीर्घकालीन बाढ़ की स्थिति के परिणामस्वरूप पौधों की क्षति, कीट और फफूँद का बढ़ना, जल निकासी प्रणाली में सुधार, कीटों एवं रोग प्रबंधन महत्वपूर्ण है।

टर्मिनल सूखा

फल गिरने, फल के छोटे आकार से उपज कम होना, सिंचाई और मल्चिंग करें। ●

न करें प्रतिबंधित कृषि रक्षा रसायनों (पेस्टीसाइड्स) का प्रयोग

डॉ. प्रदीप कुमार* एवं डॉ. संजय कुमार सिंह राजपूत**

वर्तमान में भारत में 31 दिसम्बर 2018 तक इन्सेक्टिसाइड्स एक्ट 1968 के तहत प्रयोग हेतु कुल 282 पेस्टीसाइड्स तथा 688 पेस्टीसाइड्स फार्मुलेशंस (सूत्रीकरण), एक्ट के अधीन पंजीकृत हैं। हाल ही में भारत सरकार के कृषि और किसान कल्याण मंत्रालय (कृषि सहकारिता और किसान कल्याण विभाग), नई दिल्ली की अधिसूचना 8 अगस्त 2018 द्वारा 18 कीटनाशियों को (कीटनाशी प्रतिषेध आदेश–2018) निषिद्ध किया गया है, ये कीटनाशी मानव एवं पशुओं के लिए जोखिम भरे थे तथा ये अन्ये देशों में भी प्रतिबंधित अथवा वापस ले लिए गए हैं। प्रतिबंधित कीटनाशियों की सूची निम्नलिखित है

(अ) वे कीटनाशी जिनका रजिस्ट्रीकरण, आयात, विनिर्माण, सूत्रीकरण, परिवहन और विक्रय 8 अगस्त 2018 से पूर्णतया प्रतिबंधित किया गया है और इनका उपयोग पूर्णतया निषिद्ध किया गया है।

(1) बेनोमाइल
(2) कार्बराइल
(3) डायजिनोंन
(4) फेनारिमोल
(5) फेन्थिओन
(6) लिनुरोन
(7) मिथोक्सी ईथायल मरकारी क्लोराइड (एमईएमसी)
(8) मिथाइल पैराथिआन
(9) सोडियम सायनाइड
(10) थिमेटान
(101) ट्राइडेमार्फ
(12) ट्राइफ्लुरेलिन– गेहूँ में उपयोग के अलावा सभी प्रकार का उपयोग पूर्णतया निषिद्ध एवं लेबल एवं पत्रक पर चेतावनी समाविस्ट होगी कि उत्पाद जल निकायों, जलीय कृषि तथा मछली के तालाब के पास इसका उपयोग नहीं किया जाना चाहिए।

(ब) वे कीटनाशी जिनका आयात, विनिर्माण, सूत्रीकरण एवं नया रजिस्ट्रीकरण प्रमाणपत्र जारी नहीं किया जायेगा, परन्तु उपयोग 31 दिसम्बर 2020 से पूर्णतया प्रतिबंधित होगा।

- उत्पाद के लेबल और पत्रक पर चेतावनी समाविस्ट होगी कि
- उत्पाद, जल निकायों, जलीय कृषि तथा मछली के तालाब के पास इसका उपयोग नहीं किया जाना चाहिए।
- उत्पाद मधुमक्खियों के लिए विषैला है, सक्रिय मधुमक्खी फोरेजिंग अवधि के दौरान छिड़काव न करें।
- उत्पाद पक्षियों के लिए विषाक्त है।

(1) अलाक्लोर
(2) डाइक्लोरोवास
(3) फोरेट
(4) फास्फामिडोन
(5) ट्राइजोफास
(6) ट्राईक्लोरोफोन

(स) पेस्टीसाइड्स (कृषि रक्षा रसायन) जो उत्पादन, आयात एवं प्रयोग हेतु पूर्व आदेशों से निषिद्ध है

(1) आल्ड्रिन
(2) एल्डीकार्ब
(3) बेंजीन हेक्सा क्लोराइड (बीएचसी)
(4) कैल्शियम सायनाइड
(5) क्लोरोबेंजीलेट
(6) क्लोरडेन
(7) क्लोरोफेन्विफास
(8) कापर एसीटोआर्सीनाइट
(9) डाइ ब्रोमो क्लोरो प्रोपेन (डीबीसीपी)

*सहायक प्राध्यापक, पादप रोग विज्ञान, कृषि ज्ञान केन्द्र, गाजीपुर, **सह प्राध्यापक, कीट विज्ञान, फसल अनुसंधान केन्द्र, घाघराघाट, बहराइच आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या–224229

(10) डाइएल्ड्रिन
(11) इण्डोसल्फान
(12) एन्ड्रिन
(13) ईथाइल मर्करी क्लोराइड
(14) ईथाइल पैराथियान
(15) ईथाइल डाइब्रोमाइड (ईडीबी)
(16) हेप्टाक्लोर
(17) लिन्डेन (गामाएचसीएच)
(18) मैलिक हाइड्राजाइड
(19) मेनाजोन
(20) मेटाक्सूरान
(21) नाइट्रोफेन
(22) पैराक्वाट डाइमिथाइल सल्फेट
(23) पेन्टा क्लोरो नाइटोबेन्जीन (पीसीएनबी)
(24) पेन्टाक्लोरोफिनाल
(25) सोडियम मीथेन आर्सोनेट (एसएमए)
(26) टेट्राडिफान
(27) टोक्जाफेन
(28) ट्राइक्लोरो एसिटिक एसिड (टीसीए)

(द) पेस्टीसाइड फार्मूलेशन जो उत्पादन, आयात एवं प्रयोग हेतु निषिद्ध है

(1) कार्बोफ्यूरान 50 प्रतिशत एसपी
(2) मेथोमिल 12.5 प्रतिशत एल
(3) मेथोमिल 24 प्रतिशत एल
(4) फास्फेमिडान 85 प्रतिशत एसएल

(य) पेस्टीसाइड जो प्रयोग हेतु निषिद्ध है, परन्तु निर्यात हेतु उत्पादन की अनुमति है

1. कैप्टाफाल 80 प्रतिशत चूर्ण
2. निकोटिन सल्फेट

(र) देश में प्रतिबंधों के साथ सीमित उपयोग लिए प्रतिबन्धित कीटनाशक

(1) एल्यूमीनियम फास्फाइड

- 3 ग्राम की 10 एवं 20 टिकियों वाले ट्यूबों का उत्पादन, विपरण एवं प्रयोग पूर्णतया प्रतिबन्धित।
- कीट नियंत्रण संचालन केवल सरकार, सरकारी उपक्रम/सरकारी संगठन द्वारा, विशेषज्ञ की सख्त निगरानी में किया जा सकता है।

(2) कैप्टाफॉल

- फोलियर स्प्रे के रूप में उपयोग प्रतिबंधित है। केवल बीज ड्रेसर के रूप में इस्तेमाल किया जाएगा।
- शुष्क बीज उपचार (डीएस) के लिए कैप्टाफॉल 80 प्रतिशत पाउडर उपयोग के लिए प्रबंधित (विनिर्माण केवल निर्यात के लिए) है।

(3) साइपरमेथ्रिन

- साइपरमेथ्रिन 3 प्रतिशत स्मोक जेनरेटर का उपयोग केवल कीट नियंत्रण संचालकों के माध्यम से किया जाना है और आम जनता द्वारा उपयोग करने की अनुमति नहीं है।

(4) डेजोमेट

- चाय पर उपयोग की अनमुति नहीं है।

(5) डाइक्लोरो डाइफिनायल ट्राइक्लोरो इथेन (डीडीटी)

- घरेलू सार्वजनिक स्वास्थ्य कार्यक्रम को छोड़कर कृषि संबंधी समस्त फसलों पर प्रतिबंधित।
- विशेष परिस्थितियों में पौधों की सुरक्षा के लिए उपयोग विशेषज्ञ सरकारी पर्यवेक्षण की निगरानी में होगा।

(6) फेनिट्रोथियान

- टिड्डी नियंत्रण और सार्वजनिक स्वास्थ्य में उपयोग को छोड़कर कृषि में प्रतिबंधित किया गया है।

(7) मिथाइल ब्रोमाइड

- भारत सरकार के वनस्पति रक्षा सलाहकार द्वारा विशेषज्ञता प्राप्त विशेषज्ञ कीट नियंत्रण संचालक द्वारा ही उपयोग किया जाएगा।

(8) मोनोक्रोटोफॉस

- सब्जियों पर उपयोग के लिए प्रतिबंधित है।●

बैंगन में एकीकृत रोग एवं कीट प्रबंधन

रोहित कुमार बाजपेई*, डॉ. डी.पी. मिश्रा** एवं डॉ. जी.सी. यादव**

बैंगन एक लोकप्रिय सब्जी है इसमें कई पोषक तत्व जैसे मुख्यतः कैल्शियम, फास्फोरस, लोहा एवं विटामिन बी क्रमशः 18 मिग्रा/100 ग्राम, 16 मिग्रा/100 ग्राम, 9 मिग्रा/100 ग्राम, 3 मिग्रा/100 ग्राम की मात्रा में पाये जाते हैं। इसके अतिरिक्त बैंगन में विटामिन सी 12 मिग्रा/100 ग्राम की मात्रा में पाया जाता है। अगेती फसल में 200–300 कु/हे उपज लम्बे समय वाली फसल में 350–40 कु/हे तथा संकर प्रजाति में 400–800 कु/हे होती है। परन्तु इसकी फसल पर बहुत अधिक कीटों, रोगों एवं सूत्रकृमि का प्रकोप होता है, जिसके परिणामस्वरूप उपज में कमी आ जाती है।

कीटनाशकों के उपयोग संबंधी समस्याएं

इन कीटों के कारण होने वाली क्षति को कम करने के लिए बैंगन पर कीटनाशकों की एक बड़ी मात्रा का प्रयोग किया जाता है।

- जो सब्जियां कम अंतराल पर तोड़ी जाती हैं, उनमें टाले न जा सकने वाले कीटनाशक के अवशेष उच्च स्तर पर बाकी रह जाते हैं। जो उपभोक्ताओं के लिए बेहद खतरनाक हो सकते हैं।

कीट

माहू

युवा और वयस्क पत्तों का रस चूसते हैं, प्रभावित पौधे पीले पड़ जाते हैं, विकृत हो जाते हैं और सूख जाते हैं। माहू भी मधुरस का स्राव करते हैं, जिस पर काली फफूंद लगती है। जो प्रकाश संश्लेषण गतिविधि को प्रभावित करते हैं।

तना और फल छेदक

आरम्भिक चरणों में लार्वा तने में छेद कर देते हैं। मुरझाये झुके हुए तने का दिखाई देना इसका प्रमुख लक्षण है। बाद में लार्वा फल में छेद कर देते हैं जिससे वह उपयोग के योग्य नहीं रहता है।

लाल मकड़ी

लार्वा, युवा और वयस्क मुख्य रूप से पत्तियों की निचली सतह पर हजारों की संख्या में चिपककर रस चूसते हैं। पत्तियों में मकड़ी के जाल जैसा दिखाई देता है और पत्तियां पीली हो जाती हैं।

प्ररोह एवं फल भेदक

यह सर्वाधिक हानि पहुँचाने वाला कीट है। प्रारम्भ में इसके गिडार प्ररोह को भेदकर भीतर घुस जाते हैं। फलों को भेदते हैं, फल का आकार विकृत हो जाता है।

हड्डा बीटिल

कांसे के रंग जैसी लाल रंग की छोटी बीटिल होती है जो सभी वायुवीय भागों को खाती है।

लाल कीट

ये लाल रंग के छोटे कीट मुख्य रूप से पत्तियों की निचली सतह पर हजारों की संख्या में चिपककर रस चूसते हैं। पत्तियों में मकड़ी के जाल जैसा दिखाई देता है और पत्तियों पीली हो जाती हैं।

रोग

फोमाप्सिस झुलसा या फल सड़न

पत्तियों पर भूरे रंग के गोल व लम्बे दाग दिखाई देते हैं। फलों पर धब्बे पड़ जाते हैं जिनमें बाद में सड़न होने लगती है। पौधशाला में इसका आक्रमण होने पर क्लेद गलन जैसी स्थिति पैदा होती है।

छोटी पत्ती रोग

विशिष्ट लक्षण पत्तियों का छोटा होना, डंठल व तने के गांठों के बीच का हिस्सा छोटा होना है। पत्तियां संकीर्ण, मुलायम चिकनी व पीली पड़ जाती हैं।

स्केलेरेटोनिया झुलसा

टहनियां ऊपर से मुख्य तने की ओर नीचे की तरफ कमजोर पड़ जाती हैं। गंभीर मामलों में जोड़ों के निकट फफूँद लग जाती है।

मूल–ग्रंथि कृमि

सूत्रकृमि के आक्रमण से पौधों का विकास नहीं हो पाता एवं जड़ों में गाँठें पड़ जाती हैं।

एकीकृत कीट प्रबंधन की रणनीतियाँ

नर्सरी की स्थापना

- जल भराव से बचने के लिए अच्छे जल निकास हेतु हमेशा जमीन की सतह से 10–15 सेमी की ऊँचाई पर नर्सरी बेड तैयार करें।
- मई–जून के महीनों में तीन सप्ताह के लिए नर्सरी बेड को धूप में शोधित करने के लिए 45 गेज (0.45 मिमी) की पालीथीन शीट से ढक दें जिससे मिट्टी के कीड़ें,

*शोध छात्र, **सहायक प्राध्यापक, सब्जी विज्ञान विभाग, उद्यान एवं वानिकी महाविद्यालय, आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या–224229

भूमि जनित उकठा तथा सूत्रकृमि जैसी बीमारियों को कम किया जा सके। हालांकि ध्यान रखा जाना चाहिए कि धूप शोधन करने के लिए मिट्टी में पर्याप्त नमीं मौजूद हो।

- तीन किग्रा सड़ी हुई गोबर की खाद में 250 ग्राम ट्राईकोडर्मा विरडी मिलाकर संवर्धन के लिए लगभग सात दिनों के लिए छोड़ दें। सात दिनों के बाद मिट्टी में 3 वर्ग मीटर के बेड में मिला दें।
- हाइब्रिड 321 जैसे लोकप्रिय संकरों की बेड में बुवाई जुलाई के पहले सप्ताह में होनी चाहिए, बुवाई के पहले ट्राईकोडर्मा विरडी 4 ग्राम/किग्रा बीज की दर से उपचारित करना चाहिए। निराई समय–समय पर करनी चाहिए तथा संक्रमित पौधों को नर्सरी से बाहर कर देना चाहिए।

मुख्य फसल

- चूसने वाले कीटों के लिये 5 प्रतिशत नीम की खली सत्व का 2–3 बार छिड़काव करें।
- नीम की खली सत्व के छिड़काव से तना छेदक कीट के प्रकोप को कम किया जा सकता है, नीम का 2 प्रतिशत तेल सहायक होता है। यदि टिड्डों और चूसने वाले कीटों का संक्रमण अब भी निर्धारित संख्या से ऊपर हो तो प्रति हेक्टेयर 150 मिली की दर से इमिडाक्लोप्रिड 17.8 एस. एल. का प्रयोग करें।
- तना एवं फल छेदक की निगरानी और बड़े पैमाने पर उन्हें फसाने के लिए 5 प्रति एकड़ फेरोमोन ट्रैप स्थापित किए जाने चाहिए। हर 15–20 दिन के अंतराल पर कीड़ों को आकर्षित करने का चारा बदलें।
- तना एवं फल छेदक के नाश के लिए प्रति सप्ताह के अंतराल पर एक से डेढ़ लाख प्रति हेक्टेयर की दर से अण्डनाशक की टी. ब्रासिलेंसिस छोड़ें।
- सूत्रकृमि और छेदक के नुकसान को रोकने के लिए मिट्टी में 250 किग्रा/हे की दर से (दो भागों में) पौधों की पत्तियों पर पौधा लगाने के 25 और 60 दिन बाद डालें। जब तापमान 30 डिग्री सेन्टीग्रेड से अधिक या हवा का भारी वेग हो तो नीम केक का इस्तेमाल न करें तथा प्रतिरोधी किस्में जैसे लोकल बैंगलोर एम. 96, मुक्ता केशी, व्हाइट लाँग आदि का प्रयोग करें। इसके अतिरिक्त जैसे फोमोप्सिस झुलसा व बैक्टीरियल झुलसा रोग के लिए प्रतिरोधी किस्म पंत सम्राट, माहो प्रतिरोधी किस्म अन्नामलई, छोटी पत्ती रोग प्रतिरोधी किस्म अर्का शील व मंजरी गोटा, फोमोप्सिस झुलसा प्रतिरोधी किस्म पूसा भैरव व पूसा अनुपम आदि प्रजाति का चयन करें।
- बैंगन की कुछ पंक्तियों के बाद गेंदा की कुछ पंक्तियां लगाने से इसका आक्रमण कम हो जाता है।
- बैंगन की सघन खेती से छेदक और उकठा का अधिक संक्रमण होता है। इसीलिए गैर कंद फसलों द्वारा फसल बदलने का पालन किया जाना चाहिए।
- समय–समय पर अण्डे, लार्वा और हड्डा भृंग के वयस्कों को इकट्ठा कर नष्ट करना चाहिए।
- समय–समय पर पर्ण कुँचन एवं छोटी पत्ती रोग से प्रभावित पौधों को बाहर निकाल दें।
- हरी खाद का प्रयोग, पॉलीथीन के साथ आधी सड़ी घास, ब्लीचिंग पाउडर के साथ मिट्टी डालना जीवाणु जनित उकठा रोग का संक्रमण कम कर देता है।

मुख्य सुझाव

क्या करें

- फलों के कम अंतराल पर तुड़ाई करने से फलत अधिक होती है।
- समय पर बुवाई।
- खेत की स्वच्छता।
- प्रमाणित संस्थानों या विश्वसनीय स्रोतों से ही बीज क्रय करें।
- बीज बोने से पहले अवश्य उपचारित कर लें।
- नर्सरी हमेशा खेत के किनारे लगायें। जहाँ पर पर्याप्त धूप लगती हो, पेड़ की छाया न पड़ती हो।
- प्रत्येक वर्ष नर्सरी नयी जगह पर बनानी चाहिए, जिससे कीटाणु व रोगजनक की संख्या अधिक न होने पाये।
- हमेशा ताजा तैयार किए गए नीम के बीज के गूदे का सत्व उपयोग करें।
- आवश्यकतानुसार ही कीटनाशकों का प्रयोग करें।
- खपत से पहले फल को अच्छी प्रकार धुलाई करें।
- गर्मी के दिनों में बैंगन के फल आने के 8–10 दिन बाद तोड़ लें।
- रोग प्रतिरोधी किस्में उगायें।

क्या न करें।

- खेत में पानी का जमाव न होने दें।
- कीटनाशक का प्रयोग अनुशंसित मात्रा से ज्यादा न डालें।
- एक ही कीटनाशक लगातार न दोहरायें।
- सब्जियों पर मोनोक्रोटोफास जैसे खतरनाक कीटनाशक का प्रयोग न करें।
- कीटनाशकों के प्रयोग के बाद 3–4 दिन तक फल को न तोड़ें।

दिसम्बर माह में किसान भाई क्या करें

फसलों में

डॉ. सौरभ वर्मा
सह प्राध्यापक (सस्य विज्ञान)

(1) समय से बोये गये गेहूँ में पहली सिंचाई ताजमूल अवस्था में 20–25 दिन पर करें।

(2) गेहूँ में चौड़ी पत्ती वाले खरपतवार के नियंत्रण के लिए 675 ग्राम 2,4 डी सोडियम सॉल्ट 80 प्रतिशत घुलनशील चूर्ण तथा गेहूँसा के लिए 75 प्रतिशत आइसोप्रोट्यूरान 1.50 किग्रा को 600 से 800 लीटर पानी में घोलकर प्रति हेक्टेयर चपटे नॉजिल वाले स्प्रेयर से बुवाई के 30–35 दिन पर छिड़काव करें।

(3) चना, मटर तथा मसूर में 45–60 दिन पर सिंचाई करें।

(4) लाही में दाना पड़ने पर तथा राई में फूल आने की अवस्था पर सिंचाई करें।

सब्जी एवं उद्यान में

डॉ. एस. के. वर्मा
वरिष्ठ वैज्ञानिक एवं अध्यक्ष

(1) नवम्बर के अन्तिम सप्ताह में हल्की सिंचाई के बाद फूलगोभी एवं पातगोभी में नत्रजन की आधी मात्रा डालकर मिट्टी चढ़ा दें।

(2) नवम्बर के प्रथम पखवारे में जो आलू बोये गये हैं उसमें माह के प्रथम पक्ष मे हल्की सिंचाई करके नत्रजन की आधी मात्रा देकर मिट्टी चढ़ा दें।

(3) नवम्बर में डाली गयी पूसा रेड या नासिक रेड प्याज की पौध की रोपाई माह के दूसरे पक्ष में 15 गुणा 10 सेमी की दूरी पर 20 टन सड़ी गोबर की खाद तथा 50:50:80 ना.फा.पो. प्रति हेक्टेयर डालकर करें।

(4) नये बागों में थालों की निराई–गुड़ाई करके उचित नमी बनाये रखने के लिए 10–15 दिन के अन्तराल पर सिंचाई करते रहें। पाला से बचाने के लिए घास–फूस की ठठरी बनाकर तीन तरफ से ढक दें।

(5) अंगूर की बाग लगाने के लिए पंक्ति से पंक्ति तथा पौधे से पौधे की दूरी 2–3 मीटर रखकर 60 गुणा 60 गुणा 60 सेमी आकार के गड्ढे खोद लें। गड्ढों को 15–20 दिन खुला छोड़ने के बाद खाद तथा मिट्टी को समान मात्रा में 50–100 ग्राम बीएचसी तथा 0.5 से 1 किग्रा सुपरफास्फेट डालकर सिंचाई करें

पौध संरक्षण

डॉ. वी. पी. चौधरी
सहायक प्राध्यापक (पादप रोग)

(1) तिलहन में झुलसा एवं सफेद गेरुई रोग के नियंत्रण के लिये जिंक कार्बामेट की 2 किग्रा मात्रा 1000 लीटर पानी में घोलकर प्रति हेक्टेयर छिड़काव करें।

(2) आलू तथा टमाटर में पिछेती झुलसा रोग के नियंत्रण के लिए मैंकोजेब 2.5 किग्रा मात्रा को 800–1000 लीटर पानी में घोलकर प्रति हेक्टेयर छिड़काव करें।

(3) आम एवं कटहल के पौधों में मिलीबग के नियंत्रण के लिए तने की एक मीटर ऊँचाई तक 30 सेमी चौड़ी तथा 400 गेज मोटी पॉलीथीन की पट्टी बाँधकर किनारे पर मिट्टी या ग्रीस से चिपका दें।

पशुपालन

डॉ. अनिल कुमार
सह प्राध्यापक (पशु विज्ञान)

(1) सर्दी का मौसम भैंस के लिए गर्भाधान हेतु उत्तम होता है। अतः मादा भैंसों में गर्भाधान हेतु उत्तम नस्ल के नर भैंसों का प्रयोग करें।

(2) प्रत्येक पशुपालक को दुधारू पशुओं तथा उनकी संतति के उत्तम रख–रखाव हेतु खिड़कियों एवं दरवाजों पर टाट अथवा बोरे के पर्दे लगाना चाहिए तथा बाँधने वाले स्थान पर पुआल का बिछावन प्रयोग करें।

(3) भेड़ों और बकरियों में प्रसूति काल चल रहा है इस पर विशेष ध्यान रखा जाये।

(4) भैसों में इस समय दूध उत्पादन का सर्वोत्तम काल चल रहा है। अतः इस समय थनैला रोग लगने की संभावना रहती है। अतः उनके थन को हमेशा स्वच्छ रखें तथा चोट आदि से बचाव किया जाय तथा उनका दूध यथा शीघ्र पूरी मात्रा में निकाल लिया जाय।

(5) अधिक अण्डा उत्पादन बनाए रखने हेतु अनुत्पादक मुर्गियों की छँटनी कर दिया जाय।

(6) ब्रायलर पालक एक दिवसीय चूजों की ब्रूडिंग पर विशेष ध्यान देकर तापमान का उचित निर्धारण करें जिससे सर्दी से होने वाली मृत्यु को रोका जा सके।

(7) खिड़कियों पर टाट अथवा बोरे का पर्दा लगाकर सदी से बचाव करें।

संकलनकर्ता : डॉ. अनिल कुमार, सह प्राध्यापक, प्रसार निदेशालय, आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या, उ.प्र.

प्रश्न किसानों के, जवाब वैज्ञानिकों के

प्रश्न : आलू की फसल में कौन–कौन से रोग लगते हैं?

(श्री राम अवध दुबे, ग्राम दूबे का पुरवा, जनपद अयोध्या)

उत्तर : आलू की फसल में मुख्यता अंगमारी काला कोढ़, जीवाणुज, मृदु गलन, सामान्य स्कैब, मोजैक, लीफ रोल आदि लगते हैं। आलू में बुवाई 40 दिन बाद प्रायः अगेती अंगमारी का आक्रमण होता है। पत्तियों पर काले धब्बे जिनमें चूड़ीदार गड़रियाँ (रिंग) दिखाई पड़ती हैं। प्रकोप अधिक होने पर कई धब्बे आपस में मिलकर विकराल रूप धारण कर लेती हैं। पिछेती अंगमारी (झुलसा) देर से आरम्भ होती है। दिसम्बर या जनवरी के महीने में जब तापमान नीचे जाता है और नमी 60 प्रतिशत से अधिक हो जाती है एवं आकाश में बादल छाये रहते हैं या हल्की वर्षा होती रहती है ऐसी अवस्था में यह रोग भयंकर रूप धारण करता है। पत्तियों पर नोक या किनारे से जल सिक्त धब्बे बनते हैं और अनुकूल वातावरण होने पर सम्पूर्ण पौधा तीन–चार दिन में समाप्त हो जाता है। ऐसे समय वर्षा होने से मिट्टी कन्दों पर से हट जाता है और बीमारी का आक्रमण कन्दों तक हो जाता है जिसके कारण कन्दों के ऊपर कत्थई रंग के धब्बे बनते हैं।

प्रश्न : बटेर मुर्गियाँ अण्डा कब देना शुरू करती हैं तथा साल में कितने अण्डे देती हैं?

(श्री आमीन अहमद, ग्राम भेलसर, जनपद अयोध्या)

उत्तर : बटेर मुर्गियाँ छः सप्ताह की आयु में अण्डा उत्पादन करने योग्य हो जाती हैं। इनसे 6–7 सप्ताह की आयु में 50 प्रतिशत तथा 6–10 सप्ताह की आयु में 80 प्रतिशत अण्डा उत्पादन किया जा सकता है। अच्छी देखभाल करके बटेर से 250–300 अण्डे प्रति वर्ष प्राप्त किया जा सकता है। अण्डे का औसत भार 11 ग्राम होता है।

प्रश्न : प्रायः खेतों में आलू के कन्द गलने लगते हैं क्या करना चाहिए?

(श्री प्रदीप पाण्डेय, ग्राम पित्राखो, जनपद बस्ती)

उत्तर : इसमें कन्द का विगलन होता है। यह गलन फसल की खुदाई के समय दिखाई पड़ती है। यदि अन्य निकटवर्ती कन्द गलने लगें तो यह जीवाणु मृदु गलन का सूचक है। बोने से पहले कटे पिटे कन्दों को कभी भी प्रयोग में न लायें साथ ही बीजोपचार करना न भूलें। जिस खेत में पहले वाली फसल में यह बीमारी आई हो उसमें फिर फसल न लें।

लेखकों से अनुरोध

- लेख भेजने से पहले यह सुनिश्चित कर लें कि आप पूर्वांचल खेती की वार्षिक सदस्यता ग्रहण कर लिए हैं, जो रूपया दौ सौ बीस (220.00) मात्र ही देय होगा। एक लेख में जितने भी लेखक होंगे सभी की सदस्यता अनिवार्य होगी।
- लेख भेजते समय पूर्वांचल खेती की सदस्य संख्या तथा सदस्यता अवधि सभी लेखकों को लेख के ऊपर लिखना अनिवार्य होगा।
- लेख फसलोत्पादन, सब्जी उत्पादन, बागवानी, गृह विज्ञान, मत्स्य अथवा पशुपालन आदि विषयों पर आधारित हो।
- लेख दो प्रतियों में डबल स्पेस में टाइप हो।
- लेख आकर्षक एवं अपने में ठोस हो।
- लेख आँकड़े से भरपूर हो।
- सम्बन्धित माह तथा मौसम की जानकारी से छः माह पूर्व प्रेषित हो।

प्रधान सम्पादक

पंजीयन संख्या - 54461/91 डाक पंजीयन संख्या एल. डब्लू./एन.पी. 34

प्रसार निदेशालय

आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय

कुमारगंज, अयोध्या – 224 229

द्वारा

कृषि तकनीकी सूचना केन्द्र

के अन्तर्गत प्रकाशित ग्रामोपयोगी पुस्तकें

पुस्तक	मूल्य रु.
आधुनिक मधुमक्खी पालन एवं प्रबन्ध	20.00
जिमीकन्द की खेती	15.00
मशरूम उत्पादन एवं उपयोगिता	12.00
किसानोपयोगी फसल सुरक्षा तकनीक	50.00
फसल उत्पादन तकनीक	35.00
जीरो टिल सीड कम फर्टी ड्रिल	10.00
फल–सब्जी परीरक्षण एवं मानव आहार	50.00
गन्ने की आधुनिक खेती	15.00
जीरो टिलेज गेहूँ बुवाई की एक विश्वसनीय तकनीक	20.00
केचुआ पालन (वर्मीकल्चर) एवं वर्मी कम्पोस्ट उत्पादन	10.00
व्यावसायिक कुक्कुट (ब्रायलर) उत्पादन	20.00
फसलों के सूत्रकृमि रोग एवं उनका वैज्ञानिक प्रबन्धन	25.00
आय संवर्धन हेतु प्रमुख सब्जियों की उत्पादन तकनीक	25.00
गृहणियों के लिए बेकिंग कला	25.00
स्वच्छ दूध उत्पादन तकनीक एवं उसका महत्व	20.00
गायों एवं भैसों के मुख्य रोग, टीकाकरण एवं संतुलित पशु आहार	20.00
मछली पालन	40.00
फसल अवशेष प्रबंधन	30.00

प्रति रूपये 25/–मात्र

मुद्रित

सेवा में,
श्री/श्रीमती

प्रेषक:
प्रसार निदेशालय
आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय
कुमारगंज, अयोध्या – 224 229

आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या की ओर से प्रो. ए.पी. राव निदेशक प्रसार द्वारा सम्पादित एवं प्रकाशित